नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 5 अंक 6
जुलाई 2003 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

अनुराग पुस्तकालय एवं वाचनालय

जनता को तबाही से कौन बचायेगा?–सिर्फ़ और सिर्फ़ मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी राजनीति!

चुनावी नौटंकी की तैयारियाँ तेज़–यह घिनौना खेल हम कब तक बर्दाश्त करेंगे?

निराशा छोड़ो, निर्णायक बनो!

• सम्पादक

सभी चुनावी पार्टियों के भीतर अफरातफरी का माहौल है। लोकसभा चुनाव अगले ही वर्ष होने वाले हैं। चार विधानसभाओं के चुनाव आसन्न हैं। जनता को फुसलाने-बहकाने, भरमाने-भड़काने के लिए तरह-तरह के मुद्दे, नुस्खे और नारे तलाशे जा रहे हैं, क्योंकि मूल मुद्दे को दरकिनार कर देने के मसले पर सभी पूंजीवादी पार्टियों के मदारियों-जमूरों में आम सहमति है।

जनता के बीच कौन से मुद्दे उछालकर चुनावी हवा बनाई जाये-इस सवाल के अतिरिक्त अफरातफरी इस बात को भी लेकर है कि देशी-विदेशी पूँजीपतियों का मुख्य भरोसा पाने में अपने प्रतिद्वंद्वी पर बढ़त कैसे हासिल की जाये, क्योंकि यदि उनकी थैलियाँ न मिलें तो मुद्दा चाहे जो भी हो, चुनावी हवा बन ही नहीं सकती। इस मायने में आज मुख्य प्रतिद्वंदी कांग्रेस और भाजपा ही हैं। कांग्रेस देशी-विदेशी पूँजीपतियों को यह विश्वास दिलाने की कोशिश कर रही है कि निजीकरण उदारीकरण की नीतियों को वह और अधिक चुस्त और मुस्तैद ढंग से लागू करेगी और पुराना भरोसेमंद होने के नाते उसे इस बार अवश्य अवसर दिया जाना चाहिए। दूसरी ओर भाजपा अपने मालिकों को याद दिला रही है कि वह शुरू से ही निजीकरण और पश्चिमपरस्ती की नीतियों की पैरोकार रही है। वह यह भी बता रही है कि विगत चार वर्षों के दौरान उसने जिस तरह मेहनतकश जनता के ऊपर दमन का पाटा चलाते हुए, छँटनी-तालाबंदी का कहर बरपा करते हुए तथा एक के बाद एक कानून बनाकर आम लोगों के रहे-सहे अधिकारों को भी हड़पते हुए, जनता के खून-पसीने से खड़े उद्योगों को लगातार औने-पौने कीमतों पर उनके (यानी देशी-विदेशी पूँजीपतियों के) हवाले करने का काम किया है, उसे देखते हुए उसे इस बार भी अवसर दिया जाना चाहिए। वह थैलीशाहों को भरोसा दिला रही है कि साम्प्रदायिक जुनून वह उसी हद तक भड़कायेगी कि जनता बँटी रहे, वर्ग-आधार पर संगठित न हो सके और उसकी चुनावी गोट लाल होती रहे। वह भरोसा दिला रही है कि यदि उसे सत्ता मिले तो वह पूंजी-निवेश के अनुकूल "शान्ति" का माहौल बनाये रखेगी और मेहनतकशों के हर विरोध को कुचलने में भी कोई कोर-कसर नहीं उठा रखेगी। साम्राज्यवादियों और देशी पूँजीपति घरानों को भाजपा के इस तर्क में दम तो दीख रहा है, लेकिन वे भी यह जानते हैं कि साम्प्रदायिक जुनून का भी एक अपना तर्क होता है, जो कभी-कभी उभाड़ने वाले के नियंत्रण से भी बाहर हो जाता है और उस हाल में फासिस्ट ताकतों की भूमिका पूंजीवादी व्यवस्था के लिए भस्मासुरी बन जाती है। साम्राज्यवाद और देशी-पूँजीवाद भारत में भाजपा की फासिस्ट हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथी-राजनीति को जंज़ीर से बंधे शिकारी कुत्ते की तरह अपने नियंत्रण में रखना चाहते हैं, जिसे जब भी ज़रूरत हो जनता पर छोड़ दिया जाये। पर इतिहास गवाह है कि फासीवाद का शिकारी कुत्ता हमेशा मालिक थैलीशाहों के नियंत्रण में रहे, यह ज़रूरी नहीं है। पूँजीवादी लुटेरे यह भी समझते हैं कि भारत में साम्प्रदायिक उन्माद भड़काकर आम जनता को बाँट देना वर्गीय आधार पर जनता की एकजुटता की प्रक्रिया को तोड़ने-बिखराने का सबसे कारगर तरीका है, लेकिन वे यह भी नहीं चाहते कि दंगे इतने व्यापक हो जायें कि पूँजी लगाने का उनका बुनियादी मकसद ही प्रभावित होने लगे। इसीलिए वे भाजपा के ऊपर किसी गठबंधन के घटक दलों और प्रभावी विपक्षी दलों की नियंत्रणकारी भूमिका को अपने अनुकूल मानते हैं तथा साम्प्रदायिक दंगों का सैलाब खतरे के निशान के ऊपर जाने पर एक अवरोधक शक्ति के रूप में और सेफ्टीवॉल्व के रूप में अपने अनुदानों से पोषित स्वयंसेवी संगठनों का भी इस्तेमाल करते हैं।

लूट के माल में अपने हिस्से को लेकर जारी आपसी खींचतान के बावजूद साम्राज्यवादी ताकतों और उनके जूनियर पार्टनर भारतीय पूँजीपतियों में निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों पर आम सहमति है, क्योंकि उनकी आज की जरूरत और विवशता के रूप में यही उनके सामने एक विकल्प है। वे यह भी समझते हैं कि इन नीतियों को लागू करने के लिए जिस फासिस्ट किस्म के शासनतंत्र की ज़रूरत होगी उसे बनाने-चलाने के मामले में भाजपा जैसी धुरदक्षिणपंथी पार्टी पर पूरा भरोसा किया जा सकता है। लेकिन यहीं पर कांग्रेस भी आगे बढ़कर अपनी दावेदारी पेश करती नज़र आती है। आखिरकार आपातकाल के काले दिन, आपरेशन ब्लू स्टार और' 84 में सिखों के कत्लेआम जैसे कारनामे उसके खाते में भी तो दर्ज हैं। एक से बढ़कर एक काले कानून बनाने का और जनता के आन्दोलनों के दमन का "श्रेय" उसे भी तो हासिल है। जम्मू-कश्मीर से लेकर पूर्वोत्तर भारत तक में गत आधी सदी से जारी आतंकराज के हवाले देकर कांग्रेस भी यह सिद्ध कर सकती है कि यदि जनता सिर उठाये तो पूंजीवादी जनतंत्र की रामनामी चादर उतार फेंकने में वह रंच मात्र नहीं हिचकेगी। कांग्रेस थैलीशाहों को लगातार यह भी याद दिलाती है कि नयी आर्थिक नीतियों की ओर झुकाव के संकेत सबसे पहले, 1980 में पुन: सत्ता में आने के बाद इन्दिरा गांधी ने और फिर राजीव गांधी ने ही दिये थे तथा सदी के आखिरी दशक में कांग्रेसी शासन के ही दौरान राव-मनमोहन गिरोह ने ही इनके अमल के पहले चरण का श्रीगणेश किया था। वैसे तो कांग्रेस यह भी "श्रेय" ले सकती है कि रामजन्मभूमि का ताला खुलवाकर और फिर बाबरी मस्जिद ध्वंस की मूक दर्शक बनकर साम्प्रदायिकता की राजनीति को भी परवान चढ़ाने में उसकी भूमिका बुनियादी रही है! मुख्य दाँव दो मुख्य प्रतिस्पद्धियों में से किस चुनावी घोड़े पर लगाया जाये, इस बात को लेकर शासक वर्ग सचमुच दुविधा में है, आपस में बँटा हुआ भी है और प्रतीक्षा करते हुए हवा का रुख देख रहा है। इसीलिए दोनों प्रतिस्पर्द्धी बुर्जुआ दल खूब मशक्कत कर रहे हैं, चिन्तन शिविर और निर्धार

(शेष पृष्ठ 6 पर)

पूँजीपति-पुलिस गँठजोड़ का 'बिगुल' पर हमला

नोएडा में बौखलाए उद्योगपतियों की शह पर 'बिगुल' के साथियों की अवैध गिरफ्तारी और पिटाई

• सम्पादक

मजदूरों के बर्बर शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ 'बिगुल' की आंदोलनपरक रिपोर्टिंग से बौखलाए नोएडा के कुछ उद्योगपतियों की शह पर पुलिस ने पिछली 16 जुलाई को हमारे तीन साथियों को अवैध तरीके से पकड़कर बुरी तरह मारा-पीटा और बिना किसी आरोप के करीब चौबीस घंटे तक थाने में बंद करके प्रताड़ित और अपमानित किया।

गत 16 जुलाई की शाम को 'बिगुल' के संवाददाता साथी नन्हेलाल और 'बिगुल मजदूर दस्ता' के दो कार्यकर्ता जयप्रकाश मौर्य तथा गौतम विश्वकर्मा नोएडा के सेक्टर-11 के पास काम से लौट रहे मजदूरों के बीच हाँक लगाकर अखबार बेच रहे थे और मजदूरों से बातचीत कर रहे थे। अचानक पुलिस की जिप्सी वहाँ पहुँची और खतरनाक अपराधियों की तरह झपटकर तीनों साथियों को पकड़ लिया। आरोप के बारे में पूछने पर पुलिसवालों ने उन्हें भद्दी गालियाँ दीं और जबरन जीप में ठूँसकर सेक्टर-24 के थाने पर ले गये। रास्ते में इन साथियों ने पत्रकार और एक क्रान्तिकारी संगठन के कार्यकर्ता के रूप में जब अपना परिचय दिया तो पुलिसवाले और भी गालियाँ बकने लगे और थाने पहुँचते ही लाठियों तथा थप्पड़ों से उन पर टूट पड़े। बार-बार पूछने पर भी न तो गिरफ्तारी का कारण बताया गया और न ही 'बिगुल' के दफ्तर या किसी मित्र को सूचना देने दिया गया। थानाध्यक्ष बी.डी. दुबे से लेकर नीचे तक सभी पुलिसवाले बार-बार बस यही कह रहे थे : "तुम लोग मजदूरों को मालिकों के खिलाफ भड़काते हो! नोएडा में अशांति फैला रहे हो!"

अगले दिन सुबह 'बिगुल' के उपसंपादक जनार्दन और साथी घनश्याम ढूँढ़ते हुए थाने में पहुँचे तो उन्हें भी तीनों साथियों से मिलने नहीं दिया गया। दोपहर में उ.प्र. जर्नलिस्ट- एसोसियेशन के गौतमबुद्धनगर जिलाध्यक्ष निर्मेश त्यागी और फिर वरिष्ठ पत्रकार आनंदस्वरूप वर्मा तथा सत्यम वर्मा ने थाने पहुँचकर जब जवाब तलब किया कि इन लोगों को किस धारा में गिरफ्तार किया गया है तो घबड़ाकर पुलिस ने तीनों साथियों को छोड़ दिया। हालाँकि रात से ही पुलिसवाले उन पर दबाव डाल रहे थे कि वे लिखकर दें कि वे आगे से कभी शाही एक्सपोर्ट इंडस्ट्रीज की किसी फैक्टरी के आसपास नहीं जायेंगे।

(पेज 12 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

'हताशा में 'अतिवादी' कदम उठाने को मजबूर हूँ'

मेरे एक काश्तकार परिवार ने मल्लाह जाति में जन्म लिया। मेरे बाप-दादा अपनद् थे। नतीजा यह हुआ कि उनकी समस्त अचल सम्पत्ति को गाँव के दबंग लोगों ने दस्तावेजों में फर्जीवाड़ा करके अपना कब्जा जमा रखा है। इस फर्जीवाड़े और जोर-जबर्दस्ती में ग्राम प्रधान और लेखपाल से लेकर स्थानीय पुलिस प्रशासन, जिला प्रशासन और संसद-विधानसभाओं की राजनीति करने वाले तमाम स्थानीय नेता शामिल हैं। कहने को देश आजाद है लेकिन गाँव के दबंग लोगों का वही अंग्रेज लाट साहबों वाला रवैया है जिसके बारे में हमारे बाप-दादा बचपन में कहानियाँ सुनाया करते थे। आज भी मेरे गांव के गरीबों की हालत ऐसी है जैसे शेर की माँद में रहने वाले चूहे। दबंगों, जोर-जबर्दस्ती, अन्याय-अत्याचार के खिलाफ कहीं कोई सुनवाई नहीं है। अपनी जमीन के कागजों के फजीवाड़े को दुरस्त करवाने के लिए हर जगह हाथ-पैर मारते-मारते मैं थक चुका हूँ पर मेरे पास इस फर्जीवाड़े के ठोस सबूत हैं। इसके बारे में मैं स्थानीय पुलिस, तहसील-कोर्ट-कचहरी से लेकर प्रदेश की मुख्यमंत्री, देश के प्रधानमंत्री तक सभी जगह फरियाद कर चुका हूँ सभी जगह ढाक के तीन पात। मैं भीषण हताशा में जी रहा हूँ। मेरे परिवार का कोई भविष्य नहीं रह गया है। इस हताशा में क्या कर गुजरूंगा, मुझे खुद पता नहीं है। अगर मैं कोई अतिवादी कदम उठा लूंगा तो इसकी समूची जिम्मेदारी शासन-प्रशासन की होगी।

● चिन्तामणि निषाद

ग्राम-बरूई, पोस्ट-झौवारा, जिला-सुल्तानपुर (उ.प्र.)

आपको करोड़ों बेबसों की बेबसी मिटाने के रास्ते पर चलना होगा

प्रिय साथी,

देश आजाद होने के बाद भी दबंगों के अत्याचार का जारी रहना और शासन-प्रशासन का दबंगों के साथ खड़े होना आपके गाँव की बात ही नहीं है। यह देश के गाँव-गाँव की कहानी है। आप जैसे करोड़ों गरीब मेहनतकश आज देश में तरह-तरह के जोरो-जुल्म और शोषण-उत्पीड़न की चक्की में पिस रहे हैं। दरअसल सच्चाई यह है कि आज भी देश के मेहनतकश आबादी के गले में देशी-विदेशी पूँजी की गुलामी का जुआठा लदा हुआ है। 1947 में अंग्रेजों के देश छोड़कर जाने के बाद आजादी इस देश के पूँजीपतियों ओर तमाम सम्पत्तिवान तबकों को ही मिली है। देश के समूचे उत्पादन से लेकर राजकाज और समाज के समूचे ढाँचे पर इन्हीं तबकों ने कब्जा जमा रखा है। संसद-विधानसभाओं में इन्हीं के रहनुमा बैठते हैं। संविधान इन्हीं के हितों की हिफाजत करता है। कानून और न्यायपालिका इनकी मुट्ठी में है। इन हालात में किसी गरीब मेहनतकश के लिए इस ढाँचे में इन्साफ की उम्मीद पालना पत्थर पर दूब उगाने जैसा है। आपकी बेबसी करोड़ों आप जैसे लोगों की बेबसी है। अकेले आप कोई अतिवादी कदम उठा भी लेते हैं तो इससे इस लुटेरी व्यवस्था का कुछ भी बाल-बाँका नहीं होने वाला है। अगर शोषण-उत्पीड़न की चक्की में पिस रहे करोड़ों गरीब मेहनतकश लोग मिलकर अपनी बेबसी दूर करने के रास्ते पर चलें तभी इस गुलामी से मुक्ति मिल सकती है। यह रास्ता है–मेहनतकश इंकलाब का रास्ता। देशी-विदेशी पूँजी की लूट और नये सम्पत्तिवानों के कब्जे से उत्पादन, राजकाज और समाज के ढाँचे को आजाद करने का रास्ता। आपको 'अतिवादी कदम उठाने का विचार त्याग कर इस इंकलाब का परचम उठाना चाहिए और करोड़ों बेबसों की बेबसी दूर करने के रास्ते पर चलना चाहिए। बेशक यह रास्ता लम्बा और कठिन है पर यही रास्ता मेहनतकशों की आजादी की ओर ले जाता है। आपके गाँव के दबंग भी धनी शोषकों के उसी गिरोह के सदस्य है, जिनके हाथ काफी लम्बे होते हैं और पुलिस, कोर्ट-कचहरी जिनकी जेब में होती है। हताशा में की गयी आपकी 'कोई अतिवादी व्यक्तिगत कार्रवाई इनका नुकसान कम करेगी और आपके परिवार का ज्यादा। ये जालिम यदि किसी चीज से डरते हैं तो वह है गरीबों की संगठित शक्ति से। इनके खिलाफ कारगर लड़ाई का एकमात्र सही और व्यावहारिक रास्ता यही हो सकता है कि इलाके की गरीब आबादी को जागृत और संगठित किया जाये। व्यक्तिगत हार या नाकामी से मायूस होकर बदहवासी में कोई कार्रवाई करने के बजाय अपने क्रोध को शोषकों-लुटेरों के समूचे वर्ग के खिलाफ एक संगठित शक्ति में ढालने की जरूरत है।

● सम्पादक

तीन गाँव की, तीन आन गाँव की यानि कि छह संदिग्ध मौतें!

पिछले दिनों लगभग तीन माह पूर्व एक घटना घटी। ग्राम अढ़ौर-नंगल, थाना सिहानी गेट, जिला गाजियाबाद (उ.प्र.) में एक जाट बिरादरी का लड़का किसी पास के कस्बे से एक मुस्लिम परिवार में दोस्ती होने के नाते शादी (प्रेम विवाह) कर लेता है। उसके घरवालों (बड़े भाइयों व चाचा ताऊ) आदि ने मिलकर उसे ससुरालियों या उसकी नई-नई पत्नी से मिलने से कड़ी रोक लगा दी। जिसके फलस्वरूप वह युवा लड़का एक दिन खेत पर काम के लिए गया और वहीं ट्यूबैल के कुएँ में रस्सी से लटक गया। उसका शव उसी के भाइयों को ही मिला। उस शव को देखने अन्य ग्रामीणों को नहीं जाने दिया गया तथा थोड़ी देर में ही उसका अन्तिम संस्कार कर दिया गया। जिसकी खबर कानों-कान बाहर तक नहीं जाने दी। इसका मौका मुआयना या डॉक्टरी जाँच तो दूर की बात है। यह केवल क उदाहरण है। ऐसी अनेक घटनाएं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में आये-दिन घटती रहती हैं। हमारा बिकाऊ मीडिया इन सच्ची खबरों से बेखबर रह जाता है। क्या यह आत्महत्या है या साजिशाना मौत, यह संदेहास्पद है। इसकी घटना-उन्हीं दिनों उपरोक्त गाँव के ही एक ईंट व्यापारी श्री भोपाल चौधरी (युवा, लगभग 27 वर्ष)की मृत्यु हई। इसे "साइकिल सवारं से शराब के नशे में मोटर साइकिल सवार की टक्कर" बताया जाता है। टक्कर के बाद प्राइवेट अस्पताल में भर्ती होने के कई दिनों बाद यह मौत हुई। इसका सही इलाज नहीं हुआ या यह गम्भीर दुर्घटना थी या फिर साजिश–इसका भी रहस्य बना हुआ है। मृतक के बीवी-बच्चे इधर से उधर भटकते फिर रहे हैं।

तीसरी घटना भी उक्त गाँव नँगला की है। जहाँ पिछले 25 जून की रात्रि एक पूर्व पंचायत सदस्य की रहस्यमय मौत हुई। जिसका डॉक्टरी परीक्षण शायद नहीं कराया गया और अन्तिम संस्कार करा दिया गया। तीन अन्य घटनाएं जून माह के अन्दर ही घटित तीन भट्ठी मजदूरों की संदिग्ध मौतें, अखबारों में इसे भी आत्महत्या बताया गया है किन्तु है यह भी रहस्य ही है!

● वीर सिंह

अध्यक्ष, आई.सी.टी.यू. नोएडा

गलती मैनेजमेण्ट की, सजा मज़दूरों को

मैं सेक्टर-3 की एक कम्पनी में काम करता हूँ। यहाँ मैं 4 जनवरी 2003 को 1600रु सेलरी पर लगा। साथ में दिन में दो बार चाय और 15-15 मिनट का टीब्रेक मिलता है जो बंद कर दिया गया। यहाँ मैनेजमेण्ट की गलती से पिछले पूरे महीने .कपड़ा बाहर से छपकर नहीं आया लेकिन इसकी सजा तीन मजदूरों को मिली। यह कहकर कि पूरे महीने सिगमेण्ट नहीं गया है कम्पनी घाटे में जा रही है। ढाका (डिजाइनर) विनोद (स्टोर इनचार्ज) और विनोद (प्यून) को निकाल दिया गया। दोनों विनोद छुट्टी लेकर शादी करने आये थे। जब आये तो पता चला कि उनको बाहर निकालने की तैयारी की जा चुकी है। बाद में एक मजदूर हमसे बोला कि विनोद (प्यून) पैसा लेकर (3000/-) चला गया इसलिए कम्पनी ने एडवान्स देना बन्द कर दिया है। जबकि लौटकर आने के दस दिन बाद विनोद को कम्पनी से निकाला गया। साथ में तीन चेकरों को बेवजह निकाल दिया गया और सारे नये लड़के जो 1700/- मासिक पगार या 50 रू की दिहाड़ी पर काम करते हैं उनसे प्रेसिंग, चेकिंग, पैकिंग इत्यादि सारा काम करवाया जाता है। किसी को बेवजह निकाल देना आम बात है। यहाँ सुबह 9 से शाम 6 तक ड्यूटी होती है जबकि आधा घण्टा लंच के बावजूद साढे पाँच बजे छुट्टी होनी चाहिए। यहाँ मालिक ने बोल रखा है तीन दिन जो नहीं आता है उसे निकाल दो चाहे वजह कुछ भी हो। कम्पनी घाटे में जा रही है कहकर चाय भी बन्द कर दिया गया। स्टाफ के लोगों को पानी के लिए फ्रिज लगा हुआ है। जबकि बर्कर गर्मी में आठ-आठ घण्टे काम करता है। उसके लिए टंकी का पानी। ज्यादा लड़के दिहाड़ी पर ही हैं। जिसे जब जी चाहे निकाल बाहर किया। कोई रोक नहीं है। जो दो-तीन महीने दिहाड़ी पर काम कर लेता है उसे सेलरी पर रखा जाता है। यहाँ पर दो पुराने मजदूर बचे हुए हैं उनकी गर्दन पर भी तलवार लटकी रहती है।

● धर्मेन्द्र,नोएडा

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

स्वतंत्रता की आधी सदी बाद भी गरीबी और भूख से क्यों मर रहे हैं लोग?

समाचार पत्रों की सुर्खियां गवाह हैं कि देश के आजाद होने के बाद भी भुखमरी-गरीबी-बेरोजगारी से होने वाली मौतों को रोका नहीं जा सका है। पिछले दिनों खबर आयी थी कि उत्तर प्रदेश के एक कस्बे में एक पाँच सदस्यीय परिवार को काम-धन्धे के अभाव में मजबूरन मौत को गले लगाना पड़ा काम नहीं तो पैसा कहां से आयेगा? धन बिना रोटी नहीं मिलती है। आखिर भूखा परिवार कब तक जिन्दा रहता। इसलिए पूरे परिवार ने मौत का चयन कर लिया। अखबार में छपी यह अकेली खबर नहीं थी। देश के विभिन्न क्षेत्रों में भूख और बेरोजगारी से बिलखते-दम तोड़ते परिवारों की खबरें सुर्खियों में आती रहती हैं। आजादी के बाद अगर कोई नई समस्या उभरी है तो वह है बेरोजगारी। वास्तव में बेरोजगारीजन्य गरीबी से परेशान लोग ही मौत की दुनिया में शामिल होते हैं।

पिछले लोकसभा चुनाव (1998) के दौरान भाजपा ने भय , भूख और भ्रष्टाचार से मुक्ति का नारा उछाला था लेकिन भाजपा ने यह कभी स्पष्ट नहीं किया कि उसकी सरकार भूख-बेकारी को मिटाने के कौन से उपाय करेगी। देश की अब तक की सभी सरकारों ने कभी यह स्वीकार नहीं किया कि भारत में भुखमरी है। जब भी भुखमरी से हुई मौतों का सवाल उठाया जाता है हर सरकार का एक ही जवाब होता है कि ये मौतें भुखमरी से नहीं बल्कि बीमारी से हुई हैं।

● विक्रम सिंह, लुधियाना

'बिगुल'

सम्पादकीय कार्यालय	:	69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उप कार्यालय	:	जनगण होम्यो सेवासदन मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क	:	सत्यम वर्मा, द्वारा, फ्लैट नं.-29, यू.एन.आई. अपार्टमेन्ट, जी.एच.-2, सेक्टर-11, वसुंधरा, गाजियाबाद

मूल्य - एक प्रति -रु. 3/-
वार्षिक - रु. 40.00 (डाक व्यय सहित)

'बिगुल'

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध

1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5:00 से 8:00 बजे तक)
3. जाफ़रा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 989, पुराना कटरा, यूनिवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, इलाहाबाद

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ जरूरी पुस्तकें

- कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा- लेनिन 5/-
- मकड़ा और मक्खी- विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-
- ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके- सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
- अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
- समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
- क्यों माओवाद? 10/-
- मई दिवस का इतिहास 5/-
- अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
- पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-
- बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में 5/-

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 17 रुपये रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें :

जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ

आपस की बात

चीज़ों को समझने के लिए ज़रूरी एक पत्र-व्यवहार

'बिगुल' के मई, 2003 के अंक में 'आपस की बात' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित अपने पत्र में होण्डा मजदूर यूनियन के साथी अमर सिंह ने क्रान्तिकारी लोक अधिकार संगठन की कार्यशैली पर कुछ सवाल उठाये थे। उसके उत्तर में क्रा.लो.स. के महासचिव मुनीष कुमार ने अमर सिंह को सम्बोधित पत्र बिगुल कार्यालय भेजा था। हमें यह उचित लगा कि यह पत्र अमर सिंह के उत्तर के साथ प्रकाशित किया जाये और इसलिए इसे उन्हें भेज दिया गया। अमर सिंह का उत्तर हमें जून में प्राप्त हो चुका था, पर स्थानाभाव के कारण इस पत्र-व्यवहार को इस अंक में प्रकाशित किया जा रहा है। निस्सन्देह यह एक अप्रिय-अवांछित विवाद है, पर कुछ चीजों को समझने के लिए जरूरी है। शेष फैसला पाठक स्वयं कर लेंगे। –सम्पादक

मुनीष कुमार का पत्र

अमर सिंह के पत्र 'क्रांतिकारी संगठनों का दायित्व क्या है' में किये गये कुत्सा प्रचार का जवाब

प्रिय अमर सिंह जी,

आपका समाचार पत्र 'बिगुल' वर्ष-5अंक-3 के कॉलम 'आपस की बात' में छपा पत्र शीर्षक "क्रांतिकारी संगठन का दायित्व क्या है?" पढ़ा। पत्र में आपने क्रांतिकारी लोक अधिकार संगठन की कार्यशैली पर सवाल उठाये हैं आपने संगठन द्वारा गतिविधि बुलेटिन के अंक-2 में होंडा श्रमिक आंदोलन में क्रांतिकारी लोक अधिकार संगठन की भागीदारी से सम्बधित सूचनाओं पर आक्षेप लगाये हैं। आपने लिखा है कि "संगठन के कार्यकर्ताओं ने आंदोलन के लिए आर्थिक सहयोग जुटाया" पर आपत्ति है। स्वतंत्र रूप से आंदोलन के लिए एक रुपये का भी सहयोग जुटाना तो दूर की बात है, आर्थिक सहयोग जुटाने वाली किसी टोली में इनका एक भी कार्यकर्ता कभी शामिल नहीं रहा है फिर भी इसे उपलब्धि के तौर पर गिनाने का औचित्य क्या है।"

कहते हैं तथ्य बड़े हठीले होते हैं कितना भी झुठलाने की कोशिश करो, उभरकर सामने आ ही जाते हैं। आपकी तथा पाठकों की सहूलियत के लिए गतिविधि बुलेटिन अंक-2 में छपा हिस्सा जिस पर आपको एतराज है, प्रस्तुत कर रहे हैं। बतायें इसमें क्या गलत है?

होण्डा श्रमिकों के आंदोलन को सक्रिय समर्थन- रुद्रपुर, पंतनगर, किच्छा, खटीमा इत्यादि इकाइयों ने होण्डा श्रमिक संगठन के आहवान पर फैक्ट्री की एल्यूमुनियम शॉप को अन्यत्र शिफ्टिंग के खिलाफ चलाये जा रहे आंदोलन में भागीदारी की। 7 अप्रैल के मशाल जुलूस कार्यक्रम में भी संगठन की विभिन्न इकाइयों के कार्यकर्ता शामिल रहे। अप्रैल माह में चले क्रमिक अनशन, गेट मीटिंग में संगठन के कार्यकर्ता निरंतर सक्रिय रहे। 16 अप्रैल को संयुक्त कार्यक्रम के तहत गांधी मैदान से कलेक्ट्रेट तक निकाले गये जुलूस में क्रान्तिकारी लोक अधिकार संगठन शामिल रहा। संघर्षरत मजदूरों के लिए आर्थिक सहायता जुटाने में भी क्रांतिकारी लोक अधिकार संगठन ने मदद की।

अब बात करते हैं आर्थिक सहयोग जुटाने की। 31.5.2002 को क्रांतिकारी लोक अधिकार संगठन के कार्यकर्ता शिवदेव सिंह ने रुद्रपुर में श्रीराम होंडा श्रमिक संगठन के सुधाकर राव तथा सामाजिक कार्यकर्ता सुधाकर के साथ बैंक में 895 (आठ सौ पिचानवे) रुपये का चन्दा एकत्र किया था। यह चन्दा होंडा श्रमिक यूनियन द्वारा जारी रसीद संख्या 901 से 912 पर किया गया था। इसका प्रमाण रसीदों की काउन्टर फाइल में आज भी मौजूद है।

आप न तो दूध पीते बच्चे हैं और न हो कोई सीधे-साधे, भोले-भाले व्यक्ति जो कि अज्ञानतावश इस तरह का पत्र लिख रहे हों। आप आंदोलन के दौरान होंडा श्रमिक यूनियन के पदाधिकारी थे, उसमें भी सेक्रेटरी पद पर रहे हैं। आप बिगुल मजदूर दस्ता के जिम्मेदार कार्यकर्ता भी हैं। आपसे परिपक्वता की उम्मीद की जाती है। किसी संघर्षशील यूनियन के सेक्रेटरी को यह पता ही न हो कि आन्दोलन में कौन-कौन लोग सहयोग कर रहे हैं, कौन नहीं और वह बगैर तथ्यों की पड़ताल किये मित्रों को गाली देने लगे तो वाकई लगता है, आपका हाजमा खराब है। 'अपाच्य' होने की बात अपने पत्र में स्वीकार भी की है। पूंजीवाद में मुफ्त की सलाहों की वैसे कोई कीमत नहीं होती फिर भी हमारा कहना है कि आप किसी अच्छे चिकित्सक से अपना इलाज जरूर करा लें। बड़े बुजुर्गों ने कहा है कि किसी भी बात को कहने से पहले दस तक, गिनती गिन लेनी चाहिए। आपको खासतौर से इस नसीहत का ख्याल रखना चाहिए।

आपने लिखा है कि "जहां तक पहुंच हो हम हर मजदूर आंदोलन में क्षमतानुसार भागीदारी करते हैं बल्कि यथासम्भव आर्थिक सहयोग भी जुटाते हैं। हम समझते हैं कि यह हमारा क्रांतिकारी दायित्व है। हम समझते हैं कि इसे गिनाना या उपलब्धि के रूप में प्रचारित करना तो इस मिशन को बेइज्जत करना है। जो काम आपने किया ही नहीं, उसे गिनाना तो और भी भयानक है। मेरे ख्याल से कार्यकर्ताओं को उत्साहित करने का तरीका राजनैतिक व वैचारिक होता है न कि तकनीकी।"

आप जानते ही हैं कि चेतना के लिए पदार्थ का होना जरूरी है। गतिविधि बुलेटिन निकालने के लिए गतिविधियों का होना जरूरी है। यदि आप अपने संगठन द्वारा उस स्तर की गतिविधियां नहीं कर पा रहे हैं कि गतिविधि बुलेटिन निकाल सकें तो इसके लिए हम क्या कर सकते हैं। वैसे आप जो भी कार्यवाहियां/गतिविधियां अपने संगठनों के माध्यम से करते हैं। उसकी खबर पूंजीवादी मीडिया में देना कभी नहीं भूलते हैं लेकिन जब दूसरे संगठन का मूल्यांकन करना हो तो आपका नजरिया बदल जाता है। हम आपकी इस बात से सहमत हैं कि कार्यकर्ताओं को उत्साहित करने का तरीका राजनैतिक व वैचारिक होता है न कि तकनीकी। क्रांतिकारी लोक अधिकार संगठन द्वारा गतिविधि बुलेटिन निकालना अपनी उपलब्धि गिनाना नहीं है बल्कि दूर-दराज तक फैले संगठन के कार्यकर्ताओं व शुभचिन्तकों को संगठन की गतिविधियों से वाकिफ कराना है। गतिविधि बुलेटिन आपके लिए हो सकता है कि कोई तकनीकी कार्रवाई हो, हमारे लिए तो यह विशुद्ध राजनैतिक मामला है। इसमें संगठन द्वारा ही गयी राजनैतिक गतिविधियों की सूचनाएं होती है।

एक बात के लिए मैं आपका जरूर शुक्रिया अदा करना चाहूंगा कि आप गतिविधि बुलेटिन संजीदगी से पढ़ते हैं। लैंस लेकर ढूढने से अभी तक आप बड़ी मुश्किल से एक ही गलती ढूंढ पाये हैं। वह भी बड़ी हठीली निकली और उल्टा आपके गले की हड्डी बन गयी। आपने लिखा है "झूठी उपलब्धि गिनाना वाकई खतरनाक और भयानक है।" हम आपकी इस बात से सहमत है जहां तक गतिविधि बुलेटिन का सवाल है आप माने या न माने उसकी सभी सूचनायें सही हैं। क्या आप यह बतायेंगे कि किसी के सही कार्य को झूठा साबित करना व तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर गाली देना क्या है? इस तरह से आप हासिल क्या करना चाहते हैं। मिशन गतिविधि बुलेटिन की सूचनाओं द्वारा बेइज्जत नहीं किया जा रहा है बल्कि आप जैसे लोग कर रहे हैं। क्या इस बात का साहस व ईमानदारी आपमें शेष है कि आप बिरादराना संगठन पर झूठे आरोप लगाने के लिये आत्मालोचना करें। क्रांतिकारी जो भी बात करते हैं, साहस के साथ खुलकर कहते हैं। आप अपने पत्र में कुछ सवाल भी खड़े करते हैं और बाद में लिख देते हैं कि फिलहाल मैं कुछ नहीं कहना चाहता। मेरा आपसे कहना है कि खुलकर कहिये। बहस के मैदान में आइये, डरते क्यों हैं। हम हर मुद्दे पर आपसे खुली बहस करने को तैयार हैं। आपने तो हमें बुर्जुआ तौर-तरीके वाला संगठन होने का तमगा अपनी तरफ से दे दिया है। हमारा अब आपसे कहना है कि आप कम से कम हमारे इस पत्र को छाप कर अपने क्रांतिकारी होने का सबूत तो दीजिए। सभी जानते है कि आप और 'बिगुल' एक ही हैं। यदि ऐसा न होता तो कोई भी जनपक्षधर अखबार बगैर तथ्यों की पड़ताल किये, इस तरह का कुत्सा प्रचार नहीं करता।

18 मई'03

आपका
मुनीष कुमार
महासचिव
क्रांतिकारी लोक अधिकार संगठन

अमर सिंह का जवाब

सफाई के नाम पर कानूनी लीपापोती और प्रत्यारोपः आपने खुद को खुद ही और अधिक नंगा कर दिया है!

प्रिय मुनीष कुमार जी,

आपके पत्र के शीर्षक (जो आपके द्वारा ही प्रदत्त है) में "कुत्सा प्रचार" शब्द का इस्तेमाल आपकी समझदारी का अच्छा परिचायक है। अगर कोई आपकी गलती की ओर इंगित करे तो तुरन्त "कुत्सा प्रचार-कुत्सा प्रचार" चिल्लाकर विभ्रम पैदा करना भी एक बुर्जुआ तौर-तरीका ही है। ऐसे लटके-झटके आपकी राजनीति को और बेनकाब करते हैं। आपके पत्र को पढ़कर ऐसा लगता है कि वकालत की पढ़ाई बीच में ही छोड़कर आप क्रांतिकारी राजनीति में कूद पड़े हैं। आपके ही कानूनी अन्दाज में तुर्की-ब-तुर्की जिरह करने के बजाय, हम सीधे तथ्य पर आते हैं।

कहते हैं लेखनी बड़ी निर्मम जज होती है। शब्दों की बाजीगरी या गाली-गलौज से सच नहीं बदला जा सकता। आपने ठीक ही लिखा है कि **"...तथ्य बड़े हठीले होते हैं, कितना भी झुठलाने की कोशिश करो, उभरकर सामने आ ही जाते हैं।"** जिस **"हठीले तथ्य"** ने आपको यह 'काउण्टर एफिडेविट' करने पर बाध्य किया, आइये पहले उसे देखें।

आपने अपनी सफाई के तौर कर लिखा है कि 31.5.2002 को 'क्रान्तिकारी लोक अधिकार संगठन' के कार्यकर्ता शिवदेव सिंह ने रुद्रपुर में सुधाकर राव व सुधाकर शर्मा के साथ बैंक में (किस बैंक में?) 895 रुपये का चन्दा एकत्रित किया था। प्रमाण के तौर पर आपने रसीद संख्या भी प्रस्तुत की है। (आप यह तथ्य गोल क्यों कर गये हैं कि मेरा पत्र छपने के बाद उल्लिखित रसीद संख्या, तारीख धनराशि का ब्योरा हमने ही आपको उपलब्ध कराया था।)

आइये,तथ्यों की रोशनी में आपके घपले को देखें। होण्डा फैक्ट्री के 99 दिन के उक्त आन्दोनल के दौरान हमारी कई टीमों ने पूरे इलाके में विभिन्न कारखानों, बैंकों-बीमा-बिजली-सिंचाई आदि विभागों,गांव, मुहल्लों, यहाँ तक कि बाजारों तक से आर्थिक सहयोग, अनाज आदि एकत्रित किया। रुद्रपुर का कोई भी बैंक या कार्यालय शायद ही बचा हो जहाँ से सहयोग न जुटाया गया हो। इसी क्रम में विभिन कार्यालयों से होते हुए हमारी एक टीम 'पंजाब एण्ड सिंध बैंक' रुद्रपुर की शाखा, जहाँ क्रान्तिकारी लोक अधिकार संगठन' के कार्यकर्ता शिवदेव सिंह कार्य करते हैं, पहुंची और वहां से भी रसीद संख्या 901 से 912 पर उपरोक्त धनराशि एकत्रित हुई। जाहिरा तौर पर उक्त बैंक में सहयोग जुटाने में शिवदेव सिंह ने "मदद" की (यदि वे नहीं होते तो भी सहयोग जुटता ही,) जिसे सफाई में आप अपने संगठन की उपलब्धि के तौर पर गिना रहे हैं। अब या तो 'पंजाब एण्ड सिंध बैंक' को क्रांलोस का बैंक मान लिया जाये या फिर यह माना जाये कि 'क्रांलोस' के कार्यकर्ता जिस भी संस्थान में होंगे, वहां की कोई भी गतिविधि या उपलब्धि 'क्रांलोस' के खाते में जायेगी!

वैसे तो आप 'गतिविधि बुलेटिन' में ऐसे तथ्यों का उल्लेख करना भूल गये हैं जो हमारे संज्ञान में हैं (जरूरत पड़ी तो उसका उल्लेख हम कर सकते हैं)। ऐसा ही एक तथ्य यह भी है कि होण्डा के उसी आन्दोलन के दौरान 'क्रान्तिकारी लोक अधिकार संगठन' की टीम ने अपने मई दिवस अभियान के तहत हमारे धरना स्थल पर एक नुक्कड़ नाटक प्रस्तुत करने के बाद आन्दोलनकारियों से ही आर्थिक सहयोग एकत्रित किया। हालांकि हमारा मानना था कि लगभग दो माह से आन्दोलनरत मजदूरों से (जो कि खुद सहयोग जुटा रहे थे) धनसंग्रह करना अनुचित है, फिर भी हमने सहयोग जुटाने में आपकी मदद की। यह सहयोग होण्डा के साथियों ने दिया, इसे भला 'बिगुल मजदूर दस्ता' आपकी मदद में अपनी उपलब्धि के तौर पर कैसे गिना सकता है? हमारे लिये इससे अधिक हास्यास्पद बात और क्या हो सकती है?

जैसा कि मैंने अपने पूर्व प्रकाशित पत्र में लिखा था कि यदि 'क्रांलोस' के साथी आर्थिक सहयोग जुटाने वाली किसी भी टोली में शामिल होते, स्वतंत्र रूप से सहयोग जुटाते, होण्डा के साथियों को साथ लेकर धनसंग्रह. करते (जैसा कि 'बिगुल मजदूर दस्ता','मजदूर किसान संघर्ष समिति' जैसे क्रान्तिकारी संगठनों तथा तमाम यूनियनों ने अपने-अपने स्तर पर किया था) तब तो फिर भी इसे "उपलब्धि" गिनाने पर हम मौन रहते! आप तो क्रान्तिकारी विज्ञान के "प्रकाण्ड विद्वान" हैं फिर भी इसे दुरूस्त कर लें कि पूंजीवाद हर चीज की कीमत वसूल लेता है, "सलाह" की भी।

"गतिविधि बुलेटिन" के बारे में हमने अपने पूर्व प्रकाशित पत्र में लिखा था कि "...वह इस क्रान्तिकारी संगठन की अपनी पद्धति है और फिलहाल उस पर मैं कुछ कहना नहीं चाहता।" "चेतना के लिए" कितना और किस प्रकार के "पदार्थ" की आवश्यकता है, आप जैसे "विद्वानों" को बताने की भला हम जुर्रत कैसे कर सकते हैं? आप तो लिखते हैं **"... यदि आप अपने संगठन द्वारा उस स्तर की गतिविधियां नहीं कर पा रहे हैं तो हम क्या कर सकते हैं।"** जाहिरा तौर पर **"आपके स्तर की गतिविधियां"** हम कर भी नहीं सकते और जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं कि इस तरीके का "गतिविधि बुलेटिन" निकालना ही हम क्रान्तिकारी तरीका नहीं मानते। वैसे गतिविधियों के बारे में आपकी ऐसी हेठी और अहमन्यता को देखकर कब्र में पड़ा गप्पन पादरी भी शरमा जायेगा। जहां तक पूंजीवादी मीडिया के इस्तेमाल का सवाल है, तो हम अपनी कई जनकार्रवाइयों की खबर अखबारों मे अवश्य देते हैं, लेकिन मीडिया में विभिन्न संगठनों के साझा कार्यक्रम को अपने संगठन के कार्यक्रम के रूप में प्रस्तुत करने की महारत तो आपके पास ही है।

आप लिखते हैं "...लैंस लेकर ढूंढने से अभी तक बड़ी मुश्किल से एक ही गलती ढूंढ पाये हैं।" यदि 'गलती ढूंढ लिया' की रट कोई दूधमुहां बच्चा लगाता तो फिर और बात थी, लेकिन आप जैसे "अनुभवी क्रान्तिकारी विद्वान" के लिए इतनी आत्मुग्धता और आत्माभिमान ठीक नहीं। महान से महान क्रांतिकारी भी गलतियों से परे नहीं होता। गलती करना उतना गलत नहीं है, जितना कि गलतियों से सीख न लेना।

आप जैसे हठीले "विद्वानों" के लिए फिलहाल इस बात का कोई मायने नहीं रह जाता है कि कौन सी गतिविधि "राजनीतिक" है और कौन सी "सांगठनिक-तकनीकी"। प्रसंगवश, मैं बता दूँ कि हमारा मकसद कौव्वे की तरह, गू में मुँह मारने का नहीं है, बल्कि इस बहाने एक विजातीय प्रवृत्ति को इंगित करना मात्र था। सौभाग्य (या दुर्भाग्य) से आपकी दो-एक 'गतिविधि ' बुलेटिन" देखने को जरूर मिली। अब खड़ी मक्खी तो हम निगल नहीं सकते, सो लिखना ही उचित समझा। वरना किसे इतनी फुर्सत है कि आप जैसे "विशुद्ध" क्रान्तिकारी संगठनों पर टिप्पणी करता फिरे। सच तो यह है कि आप द्वारा 'गतिविधि बुलेटिन' हमें नियमित मिलने को कौन कहे, यहाँ तो हम लोगों द्वारा वार्षिक चन्दा जमा करने और बार-बार कहने के बावजूद आपके स्वामित्व में निकलने वाला 'नागरिक' अखबार तक हमें महीनों नहीं मिलता। बहरहाल, चलते-चलते हम आपके कानूनी दांव-पेंच के एक और पहलू को छूना चाहेंगे। मुझे सम्बोधित यह पत्र आपने मुझे देने की भी जरुरत नहीं समझी। पत्र की प्रतिलिपि मुझे 'बिगुल' कार्यालय के माध्यम से प्राप्त हुई। ऐसा लगता है कि या तो आपका दिमागी सन्तुलन बिगड़ गया है, या फिर यह आपके 'क्रांतिकारी' राजनीति" का ही नमूना है कि आप पत्र मेरे नाम लिखते हैं और उसे भेजते हैं 'बिगुल' कार्यालय, लखनऊ। यह जानते हुए भी कि न तो मैं 'बिगुल' का प्रकाशक हूं और न ही सम्पादक, फिर भी आप मुझसे कहते हैं **"... आप कम से कम हमारे इस पत्र को छाप कर अपने क्रांतिकारी होने का सबूत तो दीजिये"।** वैसे भी लगता है कि नसीहत देने (जिसमें आप माहिर हैं) से पहले आपने स्वयं **"दस तक गिनती"** नहीं गिनी है। यहाँ एक बात और, चलिए देर से ही सही **'कुत्सा प्रचार'** शब्द आपके शब्दकोश में तो आया। इसका अर्थ भी समझकर आप अपने ऊपर लागू करें तो बेहतर हो।

वैसे आपने यह भी नसीहत दी है कि **"क्रान्तिकारी जो भी बात करते हैं, साहस के साथ खुलकर कहते हैं।"** उम्मीद है इतनी **"साहस और ईमानदारी आपमें शेष"** होगी कि अब आप एक सच्चे क्रांतिकारी की तरह खुलकर आत्मालोचना करेंगे और अपने "साधु वचनों" को आत्मसात करेंगे।

11 जून' 03

अमर सिंह, रुद्रपुर
(ऊधमसिंह नगर)

बिजली विधेयक 2003

महलों में जगमग झोपड़ियों में अंधियारा

निजीकरण -उदारीकरण की नीतियां आम जनता के जीवन में उजाला लेकर आयेंगी, इसकी तो अब कल्पना भी नहीं की जा सकती। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा है, जहां पर अंधेरे की ताकतों ने अपने पांव न पसार लिये हों। सरकार देशी-विदेशी मुनाफाखोरों के आगे दुम हिलाते हुए जनविरोधी नीतियों को लागू करने पर कैसी आमादा है, इसका ताजा उदाहरण **विद्युत विधेयक 2003** है, जो अमीरों के लिए उजाला और गरीबों के लिए अंधेरा लेकर आयेगा। इस विधेयक के अनुसार बिजली वितरण तथा उत्पादन के क्षेत्र को निजी कम्पनियों के लिए खोल दिया जायेगा। हालांकि 190 उपबंधों वाले इस विधेयक में कहीं भी 'निजीकरण' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है।

अब तक बिजली के कुल कारोबार में सरकार की 97 फीसदी भागीदारी की और निजी क्षेत्र की 3 फीसदी। जाहिर है नया विद्युत विधेयक 2003 निजी क्षेत्र की भागीदारी को बढ़ायेगा। इसके लिए राज्यों के विद्युत बोर्डों को तोड़ा जायेगा। कई राज्य सरकारों ने इस काम को पहले ही चरणबद्ध रूप से करना शुरू कर दिया है। नई भर्तियां कब की बंद हो चुकी हैं। मौजूदा कर्मचारियों पर भी इस निजीकरण की गाज गिरनी है। बिजली की दरों को कम करने के सरकारी ढोल की पोल खुल चुकी है। निजीकरण का मतलब है बिजली की दरें बढ़ेंगी ही। बिजली चोरी रोकने के उपाय सुझाने वाली सरकार इस सच को नहीं बताती कि बिजली चोरी का बड़ा हिस्सा तो कारखानेदार, बड़े फार्मर और पॉश कालोनियों में रहने वाले अमीर करते है। सरकार तो बस गरीब की झोपड़ी में कटिया से चलने वाले चालीस वाट के बल्ब को बुझाकर बिजली चोरी रोकना चाहती है।

बिजली क्षेत्र में निजीकरण से आमूलचूल परिवर्तन लाने के दावों की तो पहले ही ऐसी-तैसी हो चुकी है। चाहे एनरॉन हो या जिन राज्यों में निजीकरण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है, नतीजे सबके सामने हैं। दरअसल पूरा मामला बिजली क्षेत्र की हालत सुधारने का नहीं है, मुनाफा पीटने का है। अब तक सरकार के जरिये अपने पक्ष में नीतियां बनवाकर पूंजीपतियों ने मुनाफे में कई गुना की बढ़ोत्तरी की है। कौन नहीं जानता कि बड़े-बड़े उद्योगपतियों, थैलीशाहों को सब्सिडी देकर नाममात्र दरों पर बिजली दी गई है। इस पर भी थैलीशाहों द्वारा बिजली चोरी और बिलों का भुगतान न करना आम बात रही है। यानि निजीकरण से पहले के विद्युत बोर्ड भी पूंजीपतियों की ही मुख्यतः सेवा कर रहे थे। कहते हैं मुनाफे की हवस सुरसा के मुंह की तरह होती है। आज पूंजीपति सरकार को बीच में से हटाकर खुली लूट करना चाहते हैं। बहाना यह बनाया जा रहा है कि निकम्मे और भ्रष्ट कर्मचारियों से भरे विद्युत बोर्डों का निजीकरण जरूरी है। यह तो वही बात हुई कि नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली। बड़े भ्रष्टाचारी और परजीवी सदाचार की बात करें और कामचोरी तथा भ्रष्टाचार को खत्म करने की बात करें, तो इससे बड़ा मजाक और क्या होगा।

विदेशी पूंजी के दबाव और देशी पूंजी के अधिकाधिक मुनाफे की चाहत का ही नतीजा है विद्युत विधेयक 2003। राष्ट्रहित का डंका पीटने वाली सरकार इस तथ्य से जरूर परिचित होगी कि फ्रांस जैसे विकसित पूंजीवादी देश में आज भी बिजली उत्पादन और वितरण सरकारी कंपनियां ही करती हैं। बिजली क्षेत्र को देशी-विदेशी मुनाफाखोरों के हाथ में सौंपने का मतलब है कि देश को आर्थिक नव उपनिवेशवाद की राह पर और आगे घसीट ले जाना।

फ़र्ज़ के नाम पर ....

(पृष्ठ 11 का शेष)

(ए.सी.आर.) का डण्डा सर पर तना रहता है। हालात ये हैं कि अधिकारियों द्वारा मातहतों से बंधुआ नौकर की तरह काम-हाट बाजार से लेकर जूते में पालिश लगवाने तक का काम करवाया जाता है। यह अंग्रेजी राज की परम्परा का विकृततम रूप है। वे एक ऐसे तंत्र में रहते और जीते हैं जहां उनकी अपनी इच्छाओं, भावनाओं का दमन एक सामान्य बात हैं उन्हें तो अपने विभाग में कहीं दुखड़ा रोने तक की छूट नहीं है। वे शासन-मशीनरी के डण्डे की तरह इस्तेमाल होते रहते हैं।

ऐसे घुटनभरे गैर जनतांत्रिक माहौल में प्रायः एक आबादी अपने स्वाभिमान, अरमानों व संवेदना का गला घोंटकर पाशविक वृत्ति में शामिल हो जाती है। उनकी कुण्ठायें अपने ही भाइयों-आम जनता पर फूटती है। यह एक आम धारणा है कि रेल के जिन डिब्बों में फौजी चलते हो, वहां आम नागरिक का प्रवेश वर्जित हो जाता है। ऐसी जगहों पर वे अपनी वर्दी का जमकर दुरुपयोग करते हैं।

दूसरी तरफ इनमें से ही कुछेक जवान इस माहौल से विद्रोह कर बैठते हैं- अधिकारियों की या अपनी, अपने परिवार की जिन्दगी खत्म करके अपनी अंधी बगावत पर आमादा हो जाते हैं। इसीलिए कभी लोकेश तो कभी नामदेव, शब्बीर अहमद, प्रशांत सावंत जैसे जवान आत्मघाती अन्ध विद्रोह के रास्ते पर चल पड़ते है। आम समाज के एक हिस्से के लिए घटनाएं महज अखबारों की सुर्खियां भले ही हैं, संवेदनशील तबके के लिए ऐसी हर घटना ढेरों अनसुलझे सवाल छोड़ जाती है।सवाल यह है कि आखिर अंग्रेजी राज के खात्मे के बाद भी फौज और अर्द्धसैनिक बलों में अंग्रेजी लाट साहबों की परम्पराएं क्यों चली आ रही हैं? आजाद कहे जाने वाले देश में जवानों को अनुशासन के नाम पर गुलामों की तरह क्यों रखा जाता है? लेकिन तमाम सवालों में सबसे बड़ा सवाल यह है कि देश और समाज की सुरक्षा के नाम पर अपना 'फर्ज' निभा रहे जवानों को आजाद इंसानो की जिन्दगी कब और कैसे नसीब होगी?

बिजली निजीकरण के खिलाफ उ.प्र. के कर्मचारियों की हड़ताल की तैयारी

संघर्ष कदमताल न बने, इसकी गारण्टी जरूरी

खबर है कि उत्तर प्रदेश में बिजली कर्मचारी हड़ताल पर जायेंगे। अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे ये कर्मचारी बिजली के निजीकरण को अपने बूते रोक पायेंगे, यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन इनके नेतागण इस लड़ाई को अंतिम दम तक लड़ें तो कहा जा सकता है कि यह वीरोचित होगा। उत्तर प्रदेश में बिजली के निजीकरण को अमली जामा पहनाया जा रहा है। बिजली वितरण के काम को निजी कम्पनियों को सौंपने का फैसला हो चुका है। इसके लिए चार वितरण कम्पनियां. (डिस्काम) होंगी। मध्यांचल डिस्काम का मुख्यालय लखनऊ में, पश्चिमाचंल का मेरठ में, पूर्वांचल का वाराणसी में और दक्षिणांचल का कानपुर में होगा। हड़ताल पर जाने से पूर्व उ.प्र. के बिजली कर्मचारियों ने 25 जुलाई को इन चारों मुख्यालयों पर 'ऊर्जा क्षेत्र बचाओ' रैली आयोजित करने का निर्णय किया है।

बिजली के क्षेत्र में उत्तर प्रदेश के कर्मचारियों और आम लोगों की जो स्थिति है, कमोबेश वही स्थिति लगभग सभी राज्यों की है। चाहे मध्य प्रदेश में बिजली कटौती से तंग आकर आम जनता का सड़कों पर उतर पड़ने का मामला हो या फिर गुजरात के किसानों द्वारा बिजली की बढ़ी दरों के खिलाफ आन्दोलन का ऐलान हो, हालात पूरे देश में एक जैसे हैं। अंधेरे के खिलाफ आवाज उठा रहे लोगों पर पुलिसिया दमन अब आम हो चला है। पिछले दिनों मजदूर वर्ग की स्वयभू मसीहा पं. बंगाल सरकार ने भी लाठी से बिजली उपभोक्ताओं की खातिरदारी की। बिजली क्षेत्र की हालत सुधारने के नाम पर हर जगह बिजली वितरण और उत्पादन के काम को थैलीशाहों की झोली में डाला जा रहा है। विद्युत नियामक आयोग बनाकर धन्नासेठों के पक्ष में नियम-कानून बनाये जा रहे हैं। जनता की खून-पसीने की कमाई से बने सरकारी धन से प्राइवेट कम्पनियों को करोड़ों रुपये की गारंटी दी जा रही है। देशी-विदेशी पूंजी की खुली लूट के लिए कानून बदले जा रहे है। यह हर राज्य में चल रहा है। कहने का मतलब यह है कि झंडा किसी भी रंग का हो, सभी चुनावबाज पार्टियां अन्य जनविरोधी आर्थिक नीतियों की तरह बिजली के निजीकरण के मामले में भी एकमत हैं।

अब सवाल यह उठता है कि जब सभी चुनावबाज पार्टियां देशी-विदेशी पूंजीपतियों को खुश करने के लिए द्रविड़ प्राणायाम कर रही हों, तब क्या इन पार्टियों की पिछलग्गू ट्रेड यूनियनें कर्मचारियों के संघर्ष को असली मुकाम तक ले जाना चाहेंगी? बिजली कर्मचारियों को भी इस सवाल से अब जूझना ही पड़ेगा। संघर्ष करना बहुत जरूरी है लेकिन यह बात उससे भी जरूरी है कि किसी भी संघर्ष का एक सही राजनीतिक परिप्रेक्ष्य हो, सही दिशा हो। 'राजनीति की बातें नेताजी जानें, हम तो सच्चे मन से जिन्दाबाद-मुर्दाबाद करते हुए पीछे चलते रहेंगे। इस मानसिकता से छुटकारा पाना होगा। बरसों से वेतन-बोनस-भत्ते की लड़ाई लड़ते और कुएं के मेढक की तरह सिर्फ अपने सेक्टर के बारे में सोचते यह नौबत आई है। आज उन ट्रेड यूनियन नेताओं को कठघरे में खड़ा करना होगा। जो चुनावबाजों के पिछलग्गू हैं और जिन्होंने आम मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा-दीक्षा के काम को ताक पर रखकर उन्हें अपना पिछलग्गू बनाये रखा, मजदूरों को दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाई में उलझाये रखकर असली संघर्षों के लिए कभी तैयार नहीं किया।

पूंजीवादी व्यवस्था की अपनी करनी से आज उसका लोकतंत्र का नकाब उघड़ चुका है। व्यवस्था का असली जनविरोधी चरित्र नंगा हो चुका है। ऐसे में यदि कोई ट्रेड यूनियन अपने सदस्यों से सिर्फ आर्थिक संघर्षों के लिए कदमताल करवाती है तो यह सीधे-सीधे मजदूर वर्ग से गद्दारी है। आज अपने छोटे से छोटे संघर्ष को व्यापक सामाजिक परिवर्तन की एक कड़ी के रूप में संचालित करना होगा। मजदूर वर्ग को उसके ऐतिहासिक मिशन से परिचित कराना होगा। यह बताना होगा कि पूरे राजकाज, समाज पर नियंत्रण करने और निर्णय करने के सभी अधिकार अपने हाथ में लेने के लिए मजदूर वर्ग को आगे बढ़ना ही होगा, इसी से उसका और पूरी मानवता का हित जुड़ा है।

ट्रेड यूनियन आन्दोलन की कमियों-कमजोरियों से आंखे चार करनी ही होंगी। उ.प्र. के बिजली कर्मचारियों के सामने यह अच्छा मौका है कि वे संघर्ष की राह पर चलते हुए इन तमाम सवालों से रूबरू हों और मजदूर वर्ग के अन्य तबकों के साथ व्यापक एकजुटता कायम करें। तभी ऊर्जा क्षेत्र बचाया जा सकता है, खुद बचा जा सकता है, मजदूर वर्ग के संघर्ष को आगे बढ़ाया जा सकता है।

दो दुखियारों का मिलन–बादल-तोहड़ा एकता

13 जून 2003 को शिरोमणि अकाली दल (बादल) तथा सर्वहिन्द शिरोमणि अकाली दल में एकता की औपचारिक घोषणा हुई। जिससे बहुत कम लोगों को हैरानी हुई। क्योंकि इस एकता के बारे में पिछले कई महीनों से चर्चा चल रहीं थी। वैसे सभी जानते हैं कि जब अकाली सत्तासीन होते हैं तो आपस में लड़ते हैं, एक दूसरे की दाढ़ियां उखाड़ने तक जाते हैं। क्योंकि तब लूट के माल का बँटवारा जो होना होता है। जब अकाली सत्ता के बाहर होते है तो रंग-बिरंगें अकालियों में एकता के मौसम की शुरूआत होती है यह एकता भले ही दो पार्टियों की एकता कही जा रही है, दरअसल यह प्रकाश सिंह बादल तथा गुरुचरन सिंह तोहड़ा के बीच की एकता ही है। बुर्जुआ पार्टियों की यह खासियत ही होती है कि इन पार्टियों का सारा काम कुछ एक व्यक्तियों के इर्द-गिर्द ही घूमता है। इन पार्टियों में आम कार्यकर्ताओं की कोई पूछ नहीं होती। जनवाद की दुहाई देने वाली इन पार्टियों के अपने ढाँचे घोर गैर जनवादी हैं। बादल-तोहड़ा की एकता के बारे में आम कार्यकर्ता तो क्या दोनों गुटों के बहुत से वरिष्ठ नेताओं को भी खबर नहीं थी। बादल-तोहड़ा एकता तो तय की मगर यह सब इतनी जल्दी होगा इसकी लोगों को उम्मीद नहीं थी। गौरतलब है कि बूढ़े बुर्जुआ सियासतदान बादल-तोहड़ा अपने लम्बे राजनीतिक जीवन में कई बार मिले और कई बार जुदा हुए हैं।

दोनों में पिछली एकता 1995 में हुई थी, जब पंजाब में बनी कांग्रेस सरकार के शासन में ही खालिस्तानी आन्दोलन कुचला गया था। खालिस्तानी आतंकवाद के कुचले जाने के बाद, पंजाब में राजकीय आंतकवाद का दौर शुरू हुआ, जिसके चलते पंजाब की जनता में कांग्रेसी हुकूमत के खिलाफ जबर्दस्त गुस्सा था। इसी गुस्से की लहर पर सवार होकर 1997 के चुनाव में प्रकाश सिंह बादल पंजाब के मुख्यमंत्री बने। तोहड़ा तब शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबंधक कमेटी के प्रधान थे। बादल हुकूमत में तोहड़ा ने खुमैनी (ईरान का धार्मिक नेता) की भूमिका निभाने तथा बादल सरकार का रिमोट कंट्रोल अपने हाथ में लेने की कोशिश की। तोहड़ा की इन हरकतों से बादल बेहद परेशान थे और वह अपने बेटे सुखबीर बादल को अपने "तख्त" का वारिस घोषित करने की फिराक में थे। इस बात पर बादल व तोहड़ा में खटक गयी ओर 1999 में वे अलग-अलग हो गये। दोनों ने एक दूसरे को सिख पंथ का गद्दार घोषित किया। एक दूसरे को पंथ का गद्दार कहने वाले अब एक दूसरे को पंथ का वफादार घोषित कर हाथ मिला रहे हैं।

दरअसल भारत की बुर्जआ सियासत में कुछ भी असम्भव नहीं है। अवसरवाद जैसे शब्द यहाँ छोटे पड़ जाते हैं। इन बुर्जुआ नेताओं में एकता किसी सिद्धांत के चलते नहीं; क्योंकि इस तरह की कोई चीज तो इनके पास होती नहीं है, बल्कि किसी न किसी मजबूरी का परिणाम होती है। बादल-तोहड़ा एकता के पीछे भी कुछ ऐसे ही कारण काम कर रहे हैं। 1997 से 2002 तक अपने शासन के दौरान प्रकाश सिंह बादल, उनके बेटे सुखबीर बादल तथा बादल परिवार में रासपूतिन की भूमिका निभाने वाली बादल की पत्नी सुरिंदर कौर ने खूब दौलत बटोरी है। इस धन्धे में बादल के मंत्री-संत्री भी पीछे नहीं रहे हैं।

बादल के बहुत से साथी तो पहले ही भ्रष्टाचार के केसों में फंसे पड़े हैं। अब फिजां में इस तरह की अफवाहें हैं कि अब बादल तथा उनके परिवार का नंबर जल्दी ही आने वाला है इसलिए तोहड़ा बादल से हाथ मिलाकर बादल अकाली कार्यकर्ताओं में कुछ उत्साह भरना चाहते हैं कि उनकी गिरफ्तारी पर कुछ आन्दोलन वगैरह खड़ा किया जा सके। वह पिछले साल अकेले इस तरह की कोशिश करके देख चुके हैं, जो बुरी तरह फ्लाप हुई थी।

दूसरी तरफ बादल से अलग होने के बाद तोहड़ा जनता में बिल्कुल अलग-थलग पड़ गये थे। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के पिछले चुनाव में पूरा जोर लगाकर भी वह बादल का कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। बादल से अलग होकर उन्हें शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबंधक कमेटी के प्रधानगी पद से पहले ही हाथ धोना पड़ गया था। इसलिए कहीं भी अपनी दाल न गलते देख आखिर उसे बादल की शरण में आना ही पड़ा।

पिछले साल कैप्टन अमरिंदर सिंह की "भ्रष्टाचार विरोधी मुहिम" के जवाब में बादल लोगों-खासकर सिखों के धार्मिक जज्बात को हवा देने की कोशिश कर चुके हैं, जिसमें उन्हें नाकामी ही हाथ लगी। अब बादल-तोहड़ा एक होकर फिर इसी तरह की कोशिशें कर सकते हैं। पंजाब जनता को इसके झाँसे में आने की जरूरत नहीं है।

पंतनगर विश्वविद्यालय में भी ठेकेदारी प्रथा लागू

मज़दूर वर्ग में बेहद आक्रोश लेकिन यूनियनें खामोश

(बिगुल संवाददाता)

पंतनगर (ऊधमसिंह नगर)। पंतनगर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में आखिरकार सभी शिक्षणेत्तर कार्यों के लिए ठेकेदारी प्रथा लागू हो गयी। दिल्ली की एक फर्म 'मै. साइबेक्स कम्प्यूटर सिस्टम' द्वारा 1 मई 2003 से बकायदा ठेकेदार का काम संभालने के साथ ही, पहले से यहां विभिन्न विभागों में कार्यरत लगभग 1100 मज़दूर/ कर्मचारी एक झटके में उसके अधीन हो गये। इनसे विशेष प्रकार का फार्म (शपथ पत्र) भी भरवाया जा रहा है। पंतनगर में काम देने के नाम पर यह कम्पनी बेरोजगारों से 100 रुपये लेकर पंजीकरण भी शुरू कर चुकी है।

विश्वविद्यालय में ठेकाकरण की चर्चा एक लम्बे अर्से से रही है। यहां का प्रशासन लगातार प्रतिरोध की ताकत को तौलने की कोशिश करता रहा। उसने सबसे पहले सुरक्षा विभाग में ठेकेदारी प्रथा लागू की। यह ठेका स्थानीय कांग्रेसी सांसद के भाई को मिला। इस प्रक्रिया के लागू होते ही जो दैनिक वेतनभोगी सुरक्षा कर्मी 58 रुपये की दिहाड़ी पाते थे, अब 40 रुपये पाने लगे। इसके खिलाफ कहीं से भी विरोध की आवाज नहीं उठी। यहां की आधा दर्जन यूनियनें भी लगभग खामोश रहीं। प्रशासन के हौसले बुलन्द थे और उसने इस बार पूरे परिसर में ठेकेदारी प्रथा लागू कर दी। वैसे यहां शिक्षण कार्य के लिए प्रणाली भी लागू हो चुकी है।

पंतनगर में ठेकाकरण उस उक्त लागू किया गया है, जब यहां के मज़दूरों के ऐतिहासिक संघर्ष और वि. वि. प्रशासन द्वारा रचे गये वीभत्स हत्याकाण्ड के पच्चीस वर्ष पूरे हुए हैं। यहां की कुछ प्रमुख यूनियनों ने 21 अप्रैल से ठेकेदारी व अन्य मांगों को लेकर हड़ताल की घोषणा की थी, लेकिन प्रशासन द्वारा राज्यपाल से 6 माह तक हड़ताल पर प्रतिबंध का आदेश लाने के बाद हड़ताल स्थगित हो गयी और संघर्ष ठण्ड-सा पड़ गया। गौरतलब बात यह है कि 21 अप्रैल को ही प्रशासन ने 'साइबेक्स' कम्पनी के साथ ठेकेदारी का अनुबंध किया। यही नहीं, वि.वि. प्रशासन ने इस बार अंतर्राष्ट्रीय मजदूर दिवस (1 मई) को सरकारी तौर पर मनाया, राज्य के श्रम मंत्री मुख्य अतिथि बने, स्वास्थ्य मंत्री ने अध्यक्षता की, जिसमें यूनियन नेताओं ने भी भागीदारी की, प्रशासन ने बैग बांटे और मज़दूरों को सौगात के तौर पर उसी दिन से ठेकेदारी लागू करके जबर्दस्त 'तोहफा' दिया गया। इस प्रकार, यह आज पूरे देश में जारी ठेकाकरण प्रक्रिया की ही एक और कड़ी बन गया।

इस नयी ठेकेदारी प्रथा के अनुसार मज़दूर वर्ग की श्रेणी के लगभग सभी कार्यों (मसलन श्रमिक, हेल्पर, पशु सेवक, बुल अटेंडेंट, माली, फार्म, वर्कर, चौकीदार, मेठ आदि) के लिए 58 रुपये की दिहाड़ी निश्चित हुई है। इसके अलावा डार्करूम कार्य, स्वच्छक (स्वीपर), वायरमैन, कार्यशाला अटेंडेंट, वार्ड ब्याय, आया, पम्प या जनरेटर या ट्यूबवेल आपरेटर, शोधकार्य सहायक, जीराक्स कार्य आदि के लिए दिहाड़ी 81 रुपये, नर्स, कम्पाउण्डर, फार्मासिस्ट, प्रयोगशाला सहायक, लेखा सहायक, टंकण कार्य, मैकेनिक, अनुसंधान कार्य, अप्रशिक्षित अध्यापिका, प्रशिक्षक, ड्राइवर आदि के लिए 95 रुपये; आफसेट प्रेस कार्य, प्रोग्राम प्रोड्यूसर, मल्टीमीडिया डिजाइनर, सहायक अभिरक्षिका, प्रशिक्षित अध्यापिका आदि के लिए 100 रुपये व लेखाकार के लिए 128 रुपये की दिहाड़ी तय हुई है। विश्वविद्यालय द्वारा जारी आदेश के तहत समूह ग और घ के अंतर्गत आने वाले कार्यों को न तो अलग से कराया जा सकता है और न ही निर्धारित दर के अतिरिक्त भुगतान ही किया जा सकता है। साफ तौर पर यह भी निर्देशित किया गया है कि "किसी भी दशा में एक माह में 26 दिन से अधिक कार्य नहीं लिया जा सकता है"। (यानी 26 दिन से अधिक दिहाड़ी नहीं)।

सूचीबद्ध इस नयी दिहाड़ी नीति से मज़दूरों को पहले से मिलने वाला मासिक वेतन घट गया है। एक तो छुट्टियों के दिन की दिहाड़ी कट रही है, दूसरे कई पदों पर यह दिहाड़ी पहले से घट भी गयी है। उदाहरण के लिए प्रोजेक्ट में कार्यरत कम्प्यूटर आपरेटर (वरिष्ठता के आधार पर) 100 रुपये से 150 रुपये तक दिहाड़ी पाता था और उसका मासिक वेतन 3000-4500 रुपये बनता था, अब वह किसी भी रूप में 2400 रुपये से अधिक प्राप्त नहीं करेगा, इसमें भी 12 प्रतिशत ई.पी.एफ की कटौती होगी।

प्रशासन ने ठेकाकर्मियों की भविष्य निधि (ई.पी.एफ.) की कटौती का (12 प्रतिशत श्रमिक से व 13.61 प्रतिशत विश्वविद्यालय अंशदान) लालीपॉप जरूर थमा दिया है, लेकिन मज़दूरों का इससे कहीं भी भविष्य संवरने वाला नहीं है। यहां की दिहाड़ी (या काम) अब 'साइबेक्स' कम्पनी के रहमोकरम पर है। ऐसे में ज्यादातर श्रमिकों की ऐसी दिहाड़ी ही नहीं बनेगी कि उसके ई.पी.एफ. खाते में कोई सम्मानजनक राशि एकत्रित हो जाये, जिसे पाने के लिए वह पी.एफ.कार्यालय का चक्कर लगाये। वैसे भी यह एक तथ्य है कि भविष्य निधि में जमा दैनिक वेतनभोगी कर्मियों की छोटी-छोटी राशि मिलाकर करोड़ों रुपया ऐसे होते हैं, जिन्हें जटिल प्रक्रिया व भागदौड़ के कारण मज़दूर निकाल नहीं पाता है और गरीबों का यह पैसा सरकार प्रतिवर्ष डकार जाती है।

ठेकेदारी की इस प्रक्रिया से सबसे अधिक परेशानहाल मस्टर लिस्टेड/240 दिन काम पूरा करने वाले (व लम्बे समय से कार्यरत) वे 264 श्रमिक हैं, जिन्होंने दो वर्ष पूर्व उच्च न्यायालय से अपने नियमितीकरण का आदेश प्राप्त कर रखा है। फिलहाल भले ही ये अभी ठेकेदार के मातहत नहीं आये हैं, लेकिन नया ठेका कानून इन पर भी लागू हो गया है। इनको साल में मिलने वाली 20 छुट्टियां, बोनस, रविवार की आधी छुट्टी, सब एक झटके में खत्म हो गयी। अब वे प्रशासन से लेकर यूनियनों के पास चक्कर लगा रहे हैं। प्रशासन खामोश है और यूनियनें महज आश्वासन की चाशनी चटा रही हैं। विश्वविद्यालय प्रशासन बड़ी ही चालाकी से 'चोपड़ा एवार्ड' (3 फरवरी, 1984 को उत्तर प्रदेश के तत्कालीन श्रमायुक्त व विश्वविद्यालय प्रशासन तथा यूनियन के मध्य पंच निर्णायक श्री नन्दस्वरूप चोपड़ा द्वारा नियमितीकरण आदि के संबंध में प्रस्तुत एवार्ड, जो मज़दूरों के लम्बे संघर्ष द्वारा संभव हुआ था) को भी गोल करने की तैयारी में है।

16 हजार एकड़ कृषि फार्म वाले इस विश्वविद्यालय की जमीनें जिसे यहां के मज़दूरों ने अपने खून-पसीने से बेशकीमती बनाया था, को मज़दूरों को दरकिनार करके मुनाफाखोरों को सौंपा जा रहा है। फार्म की 300 एकड़ जमीन में ऊधमसिंह नगर जिले का हेडक्वार्टर बनाया गया। अभी आठ एकड़ ज़मीन प्रशासन ने एक एनजीओ को सौंप दिया। सुनने में यह भी आ रहा है कि उसने फार्म की 300 एकड़ जमीन ठेके पर दे दी है। चर्चा यह भी है कि इसके एक बड़े हिस्से को उसने ठेकेदारी में देने की तैयारी कर ली है। एक स्थानीय समाचार पत्र की रिपोर्ट के अनुसार राज्य सरकार यहां की तीन हजार एकड़ जमीन पर नयी उद्योग नगरी बसाने जा रही है। तय है कि ऐसा करके मुनाफाखोरों को ही फायदा पहुंचायेगी।

बहरहाल, ठेकाकरण लागू करके विश्वविद्यालय प्रशासन ने न केवल श्रमिकों की एक बड़ी आबादी के दायित्वों से पल्लू झाड़ लिया, वरन उसके लिए आगे का भी रास्ता साफ हो गया। खाली जगह भर्ती नियमितीकरण की मज़दूरों की पुरानी मांग का भी गला घोंट दिया गया। राज्य सरकार ने नियमित भर्ती पर पहले से ही रोक लगा रखी है, ठेकाकरण की यह व्यवस्था तो नियमितीकरण रोकने की कानूनी अड़चनों को भी समाप्त कर देगी। प्रशासन यह सब कुछ बेरोकटोक करने में सफल रहा। वह मज़दूरों से निपटने के लिए अपने को चाक चौबन्द भी कर रहा है। उसने एक बार फिर से परिसर में जगह-जगह चेकपोस्ट बनाना शुरू कर दिया है और सुरक्षा के इन्तेज़ाम भी बढ़ा दिये हैं।

ठेकाकरण की इस नयी व्यवस्था से यहां के मज़दूरों में बेहद रोष व्याप्त है, लेकिन यूनियनों की खामोशी व संघर्ष के किसी भी रूप के अभाव में फिलहाल यहां के मज़दूर प्रशासन के इस बड़े हमले को बेबसी के साथ झेल रहे हैं। उनके अन्दर सुगबुगाहट है और कइयों के सामने यह प्रश्न है कि क्या 25 वर्ष पहले का संघर्ष उन्हें नयी राह दिखाएगा?

आतंकवाद मिटाने के बहाने रक्षा कारोबार में भारी बढ़ोत्तरी

लगभग दो वर्ष पूर्व अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर और पेण्टागन पर हुए हमले के बाद से दुनिया में आतंकवाद के सरगना अमेरिका के नेतृत्व में पूरे विश्व के हत्यारे शासकों ने रक्षा क्षेत्र की तैयारियों में जोर बढ़ा दिया है। युद्ध की विनाशलीलाएं रचते हुए साम्राज्यवादी हत्यारों द्वारा युद्धक सामग्री के निर्माण और व्यापार पर जोर बढ़ा दिया गया है। रासायनिक हथियारों का बहाना लेकर इराक में आम जनता का कत्लेआम करने वाला अमेरिका खुद खतरनाक हथियारों का सबसे बड़ा सौदागर है और हथियारों का सबसे बड़ा जखीरा उसी के पास मौजूद है।

स्टाकहोम के शांति अनुसंधान संस्थान 'सीपरी' द्वारा जारी ताजा रिपोर्ट के अनुसार दो साल पहले अमेरिका पर हुए आतंकवादी हमले के बाद विश्व स्तर पर अमेरिका द्वारा चलाये गये 'आतंकवाद विरोधी अभियान' ने रक्षा क्षेत्र की तयारियों में भारी इजाफा किया है। जाहिरा तौर पर आतंकवाद तो महज बहाना है, असल मकसद तो तेल सहित दुनिया के तमाम संसाधनों पर कब्जा और बढ़ाना और दुनियाभर में छाई मंदी से उबरने के लिए हथियार के कारोबार को और ज्यादा बढ़ाना था। यह भी एक तथ्य है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दुनिया का सबसे बड़ा कारोबार हथियारों का ही है।

'सीपरी' द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार 1998 से इस क्षेत्र में पूरी दुनिया के पैमाने पर जारी बढ़ोत्तरी सन् 2002 तक छह फीसदी बढ़कर 794 अरब डालर तक पहुंच गयी। यह राशि विश्व के सकल घरेलू उत्पाद का 2.5 फीसदी है। प्रति व्यक्ति यह खर्च 128 डालर (6,144 रुपये) बैठता है। अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर व पेण्टागन पर हमले के बाद से रक्षा तैयारियों में दुनिया के पैमाने पर हुए इस इजाफे का दसवां हिस्सा अकेले अमेरिका के खाते में जाता है।

रिपोर्ट के अनुसार आज पूरी दुनिया के पैमाने पर रक्षा क्षेत्र में जितना खर्च किया जा रहा है उसका 43 फीसदी अकेला अमेरिका अपनी रक्षा तैयारियों पर खर्च कर रहा है। यह भी एक तथ्य है कि अफगानिस्तान और इराक पर हमले के बाद से अकेले अमेरिका के आधुनिक युद्ध सामग्री के कारोबार में भारी बढ़ोत्तरी हुई है।

● आर.देव

ईस्टर प्रबन्धन की यंत्रणा के खिलाफ एक महिला मज़दूर ने संघर्ष छेड़ा

(बिगुल संवाददाता)

खटीमा (ऊधमसिंहनगर)। ईस्टर इण्डस्ट्रीज लि. में काम करने वाली शान्ति देवी विगत 17 जून को कारखाना परिसर में उस वक्त बेहोश हो गयीं, जब प्रबन्धन उनसे जबरिया वी.आर.एस. लेने-इस्तीफा देने की मांग कर रहा था। शान्ति देवी को आनन-फानन में एक प्राइवेट नर्सिंग होम में प्रबन्धकों ने भर्ती करवा दिया। हालत सुधरते ही पुनः प्रबन्धन के लोग उन्हें धमकियां देने लगे और गाली-गलौज करते रहे। तंग आकर शान्ति देवी ने प्रबन्धन के तीन लोगों के खिलाफ दलित उत्पीड़न व अन्य मामलों पर प्राथमिकी दर्ज करवा दी है व मानवाधिकार आयोग, महिला आयोग को पत्र लिखा है।

दरअसल, फैक्ट्री डिस्पेंसरी में हेल्पर शान्ति देवी को भी ईस्टर का प्रबन्धन वी.आर.एस. के नाम पर निकालना चाहता है। यहां लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व चले मज़दूर आन्दोलन की पराजय के बाद से प्रबन्धन ने फैक्ट्री में छंटनी और मज़दूरों पर दबाव बनाने की कार्रवाई तेज कर दी है। पिछला आन्दोलन लगभग आधे मज़दूरों के टूट कर काम पर चले जाने के बाद स्थगित हो गया था। उस वक्त 28 मज़दूर निलम्बित हुए थे, जिन्हें बाद में प्रबन्धन ने तथाकथित घरेलू जांच के बाद निष्कासित कर दिया था। (हालांकि यह मुद्दा श्रम न्यायालय में विचाराधीन है) बाद में तीन और मज़दूर निकाल दिये गये थे। इसके साथ ही प्रबन्धन ने छंटनी का एक और रास्ता 'स्वैच्छिक सेवा योजना' का अख्तियार किया और अब तक 54 अन्य मज़दूरों को इसके तहत निकाला जा चुका है। यह प्रक्रिया जारी है और उसी क्रम में शान्ति देवी पर भी प्रबन्धन लगातार दबाव बनाता रहा था। लेकिन लगातार मानसिक यंत्रणा झेलने के बावजूद शान्ति देवी प्रबन्धन का मुकाबला कर रही हैं।

इस बीच प्रबन्धन ने पिछले लगभग दो माह से पूरे यार्न प्लांट को बंद कर दिया है और यहां कार्यरत सभी 55 मज़दूरों पर नौकरी छोड़ने के लिए दबाव बना रहा है। इन मज़दूरों को फालतू घोषित करते हुए उन्हें खाली बैठाया जा रहा है और उनका मानसिक उत्पीड़न जारी है। मज़ेदार बात यह है कि एक तरफ इन्हें अतिरिक्त बताया जा रहा है वहीं इस विभाग में 6-7 मज़दूर छंटनी की आशंका में फिलहाल एकजुट हैं तो प्रबन्धन इनमें तोड़फोड़ की कोशिशें कर रहा है।

कुल मिलाकर, एक आन्दोलन की पराजय, बिखरी हुई एकता और प्रबन्धकों के बढ़ते दमन के कारण यहां के मज़दूरों की स्थिति काफी बदहाल है। प्रबन्धकों के मनमानेपन का वे बुरी तरह शिकार हैं। ऐसे में शान्ति देवी ने संघर्ष का रास्ता अपनाकर एक सही पहल की है लेकिन यह काफी नहीं है। ईस्टर के सभी मज़दूरों की रोज-रोज घट रही घटनाओं से सबक लेकर व्यापक एकता बनाते हुए सूझबूझ भरे कदम उठाने चाहिए।

निराशा छोड़ो, निर्णायक बनो

(पृष्ठ 1 का शेष)

बैठकें कर रहे हैं, नारे उछाल रहे हैं तथा तिकड़मों एवं करतब करने में एक-दूसरे को मात देने की हर चन्द कोशिश कर रहे हैं। कुछ इधर-उधर के फुटकल शोशे उछालने के बाद भाजपाई बेताल फिर से राममन्दिर मुद्दे की डाल पर जा अँटका है। लेकिन इस बार यह काम और अधिक शातिर ढंग से किया गया है। आर.एस.एस. नेतृत्व और भाजपा के बीच, विहिप और भाजपा के बीच तथा भाजपा के तथाकथित उदार और अनुदार धड़े के बीच आपसी विरोध-विवाद-खींचतान का नाटक 'दो बाँके' कहानी के पात्रों के अन्दाज़ में खूब खेला गया। अटल ने उदार मुद्रा अपनाकर सहयोगियों को मुसलमान आबादी के एक हिस्से को तथा आम अमनपसन्द आबादी के विभ्रमग्रस्त उदार तबके को रिझाने की कोशिश की। सिंघल-तोगड़िया अटल पर बरसे, अदालत के किसी भी फैसले को मानने से इनकार करके मन्दिर निर्माण के लिए कानून बनाने को कहा तथा 1989-1992 से भी बड़ा "हिन्दुत्व आन्दोलन" खड़ा करने की धमकी दी। आडवाणी ने संतुलन की भूमिका निभाई। कुल का निचोड़ रायपुर में भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी बैठक में यह निकला कि पार्टी मन्दिर-निर्माण के लिए प्रतिबद्ध है और कानून बनाने को भी तैयार है, पर इसके लिए पार्टी का बहुमत में आना ज़रूरी है। यानी कुल खेल इस प्रकार खेला जा रहा है कि जो सिंघल तोगड़िया जैसे उन्मादियों के प्रभाव में आयें वे अटल के तथाकथित नरम रुख से नाराजगी के बावजूद और कोई प्रभावी विकल्प न होने के कारण आडवाणी को प्रधानमंत्री के रूप में देखने की चाहत रखते हुए भाजपा को ही वोट देंगे। दूसरी ओर अटल का नरम मुखौटा दिखाकर उदारवादी, नरम हिन्दुत्ववादी तथा भयग्रस्त निराश आम मुस्लिम आबादी के वोट भी भाजपा की झोली में डालने की कोशिश जारी है। इसके पीछे एक कारण यह भी है कि भाजपा को इस कड़वी सच्चाई का अहसास है कि अगली बार यदि वह सत्ता में आयेगी भी तो गठबंधन के ही सहारे, बशर्ते कि स्थितियों में कोई नाटकीय बदलाव न आ जाये। अत: भविष्य के सहयोगियों की सहूलियत का ध्यान रखते हुए नरमपंथ की पैंतरेबाजियां करते रहना भी ज़रूरी है।

हालात ने कांग्रेसियों को भी "यथार्थवादी" बना दिया है और अकेले सरकार बना पाने की सम्भावना क्षीण होने के साथ ही उन्होंने भी गठबंधन के लिए अपने दरवाजे खोल दिये हैं। साथ ही, अपने बूते पर सत्ता में आने के लिए वे हर तरह की तिकड़म आजमा रहे हैं। दिग्विजय सिंह गायपूजक बन गये हैं। अजीत जोगी रामपूजा के आयोजन करवा रहे हैं। सोनिया गाँधी मन्दिरों में दर्शन कर रही हैं और धर्माचार्यों से मिल रही हैं। यानी नरम हिन्दुत्व का कार्ड बड़ी कुशलता से खेला जा रहा है। साथ ही, दिग्विजय सिंह एक ओर भोपाल घोषणा पत्र जारी करके दलितों को फिर कांग्रेस के पाले में लाने की कोशिश कर रहे हैं तो दूसरी ओर पिछड़ों को भी आरक्षण कोटा बढ़ाकर लुभाने की कोशिश कर रहे हैं। उधर अशोक गहलोत गरीब सवर्णों को आरक्षण का शिगूफा उछाल रहे हैं। इस सच्चाई की कोई चर्चा तक नहीं करता कि जब नौकरियाँ हैं ही नहीं तो फिर आरक्षण का मतलब ही क्या है!

मन्दिरों के बाहर भिखारियों के साथ जिस तरह कुत्तों और बन्दरों की अनिवार्य उपस्थिति होती है, वैसे ही स्थिति छोटी पूँजीवादी पार्टियों की- जनता दल के बिखरे हुए धड़ों की और क्षेत्रीय पूँजीवादी पार्टियों की है। उन्हें इस सच्चाई का अहसास है कि यदि ये एकजुट होकर "तीसरी ताकत" का खेल खेलें भी तो अपने बूते पर सत्तासीन नहीं हो सकते। साथ ही, इन्हें इस सच्चाई का भी अहसास है कि गठबंधन की राजनीति भाजपा और कांग्रेस दोनों की मजबूरी है। गठबंधन की राजनीति वास्तव में पूँजीवादी व्यवस्था के संकट की निशानी और नतीजा है, जिसका लाभ उठाकर सत्ता का चूरन चाटने के लिए छोटे बुर्जुआ दल एकदम तैयार हैं। केन्द्र में सत्ता के खेल के छुटभैये खिलाड़ी होने के बावजूद ये पार्टियाँ मौकापरस्ती के घिनौने खेल में किसी से कम नहीं हैं। रामविलास पासवान और अजीत सिंह भाजपा की गोद में बैठे रहते हैं और फिर अचानक छिटककर साम्प्रदायिकता के खिलाफ बिगुल बजाने लगते हैं और क्रमश: दलित हितों और किसान हितों की दुहाई देने लगते हैं। दलितों के बीच से पैदा हुए कुलीनों और दलालों की पार्टी ने तो मौक़ापरस्ती में न सिर्फ पुरानी रिपब्लिकन पार्टी के धड़ों को, बल्कि सभी बुर्जुआ दलों को मीलों पीछे छोड़ दिया है।

आज वह किसे गाली दे रही है और कल सत्ता के लिए किसके साथ चूमाचाटी करने लगेगी, इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। नेशनल कांफ्रेंस, द्रमुक, अन्नाद्रमुक, तेलुगूदेशम जैसी पार्टियों की मुख्य चिन्ता अपने राज्यों में सत्ता की है। केन्द्र में ये किसी के साथ रास रचा सकती हैं। कांग्रेस के साथ न जा पाने की अकाली दल और शिवसेना की अपनी मजबूरियाँ हैं। लेकिन यदि राज्यों में स्वतंत्र रूप से सत्तासीन होना मुमकिन हो तो यह भाजपा से नाता तोड़ भी सकती हैं या अपना उल्लू सीधा करने के लिए किसी "तीसरे मोर्चे" में भी शामिल हो सकती हैं। मूल बात यह है कि छोटे पूँजीपतियों, क्षेत्रीय पूँजीपतियों, उच्चमध्यवर्ग और धनी किसानों का प्रतिनिधित्व करने वाली इन सभी पार्टियों का चरित्र आज घनघोर जनविरोधी और घृणित अवसरवादी बन चुका है। जिन राज्यों में ये सत्तासीन होती हैं, उनमें ज़रूरत के मुताबिक घोर आतंक राज क़ायम करने में, जनान्दोलनों का दमन करने में भ्रष्टाचार और अपराध का घटाटोप रचने में तथा काले कानून बनाने में इन्हें कोई हिचक नहीं होती। निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों को लागू करने में भी ये कांग्रेस और भाजपा से एक इंच पीछे नहीं हैं। यह भी भूला नहीं जाना चाहिए कि केन्द्र में सत्तारुढ़ देवगौड़ा और गुजराल की जिन सरकारों में ये पार्टियां शामिल थीं और चुनावी वामपंथी भी शामिल थे (या समर्थन दे रहे थे), उन सरकारों ने भी नई आर्थिक नीति को ही आगे बढ़ाने का काम किया।

सबसे विचित्र और हास्यास्पद स्थिति तो चुनावी वामपंथी दलों की है। कभी ये दल भाजपा की साम्प्रदायिक राजनीति के खिलाफ सेक्युलर ताकतों को लामबंद करने के नाम पर कांग्रेस को भी निशा-निमंत्रण भेजते हैं और फिर कांग्रेस जब दुलत्ती झाड़ती है तो भाजपा और कांग्रेस के खिलाफ तीसरी ताकत को लामबंद करने का नारा लगाने लगते हैं। बंगाल और केरल में कांग्रेस के मुख्य प्रतिद्वंद्वी होने के कारण केन्द्र में उसके साथ पींगे बढ़ाने में इन्हें विशेष अड़चन महसूस होती है, लेकिन "व्यापक राष्ट्रीय हित में हिन्दुत्ववादी राजनीति के विरोध" की ज़रूरत बताते हुए वे केन्द्र में कांग्रेस के साथ सम्भावित गठजोड़ का रास्ता लगातार खोले रहते हैं। पूरी तरह नंगे होने पर भी सिर पर लगी लाल कलंगी की हिफाजत के लिए मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी में अपने लगातार सिकुड़ते जनाधार को बचाने की कोशिश में ये दल निजीकरण-उदारीकरण के विरोध का ज़ुबानी जमाखर्च और कुछ बंद, कुछ हड़तालों, कुछ प्रदर्शनों की रस्म-अदायगी करते रहते हैं। लेकिन इन सबके बावजूद, इन गद्दारों की घिनौनी असलियत अब जनता से छिपी नहीं रह गयी है। बंगाल में और केरल में (जब ये सत्ता में थे) ये दल निजीकरण- उदारीकरण की उन्हीं नीतियों को मुस्तैदी से लागू करते हैं, जिनका केन्द्र स्तर पर विरोध करते हैं। साम्प्रदायिक फासीवाद के विरोध में ये नकली वामपंथी सिर्फ संसद-विधानसभाओं में तथाकथित धर्मनिरपेक्ष तीसरी ताकतों का संयुक्त मोर्चा बनाने की कवायद करते रहते हैं। धार्मिक कट्टरपंथ के विरोध में मेहनतकश अवाम को लामबंद करने और संघर्ष के रास्ते पर उतरने के लिए विगत पन्द्रह वर्षों में इन्होंने कुछ भी नहीं किया क्योंकि संघर्षों की आँच से अब इनकी नाज़ुक हो चुकी चमड़ी झुलसने लगती है। असली लाल झण्डा तो ये कभी का फेंक चुके हैं। चुनावी चाट चाटना इनका लाइलाज व्यसन बन चुका है। इनके चूतड़ संसद की मखमली कुर्सियों के आदी बन चुके हैं। मेहनतकश जनता का हर सदस्य इनके लिए महज एक मतपत्र है, जिसके लिए ये वामपंथी नारों की जुगाली करते रहते हैं।

असल बात यह है कि आने वाले चुनावों में किसी भी संसदीय पार्टी के पास कोई मुद्दा है ही नहीं। तरह-तरह के भावनात्मक मुद्दे उभाड़कर आम जनता को ठगने के अतिरिक्त उनके पास और कोई रास्ता नहीं। मन्दिर-मस्जिद का मसला जिन्दा रहे, पाकिस्तान के साथ तनाव बना रहे, इसी में इन सभी दलों की भलाई है। किसी को हिन्दुत्व कार्ड खेलना है तो किसी को उसका विरोध करना है। रोल तय हैं। अन्धराष्ट्रवादी जुनून की ज़रूरत बुनियादी समस्याओं से ध्यान हटाने के लिए हर सरकार को होगी, चाहे वह किसी भी दल की हो। मूल आर्थिक राजनीतिक मसलों पर सभी बुर्जुआ पार्टियाँ और सभी नकली वामपंथी एकमत हैं। ये पार्टियाँ जिन लुटेरे वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं, अपने लूट के तंत्र को चलाने के लिए उनके पास एकमात्र यही रास्ता बचा है। निजीकरण-उदारीकरण पर सभी संसदीय पार्टियों की आम सहमति के मूल में यही बात है।

अन्दर की असलियत आज सतह की सच्चाई बन चुकी है। संसद बहसबाजी का अड्डा मात्र है, एक सुअरबाड़े से भी बदतर हैं– इसे सभी जानते हैं। दुनिया के सबसे घृणित भ्रष्टाचारी और अपराधी यदि आज के पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किसी को यह उम्मीद नहीं कि किसी पार्टी की कोई सरकार जनता की स्थिति में सुधार ला सकती है। पूँजीवादी व्यवस्था में सरकारें पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी का काम करती हैं, इसे समझना आज किसी के लिए कठिन नहीं है।

तय है कि विकल्प इस व्यवस्था के भीतर नहीं है। इस व्यवस्था के ध्वंस के बाद ही नया विकल्प रचा जा सकता है। विकल्प है। वह इस देश के मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश अवाम के पास है। रास्ता बस यही है कि मज़दूर वर्ग जनतंत्र का छद्म ओढ़े धनतंत्र के खिलाफ एकजुट होकर अपनी फौलादी मुट्ठी एकबार फिर ताने और फिर उसके प्रचण्ड प्रहार से इस राज्यसत्ता को पूँजीपति वर्ग की इस तानाशाही को चकनाचूर कर दे। मज़दूर वर्ग को उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे पर अपना नियंत्रण कायम करना होगा और फैसले की ताकत अपने हाथों में लेनी होगी। पूँजीवादी जनतंत्र का एक ही जवाब है सर्वहारा जनतंत्र। जनता के पास इसके अतिरिक्त और चारा ही क्या है कि वह उन्हें तबाह कर दे, जो उसे लगातार तबाह कर रहे हैं।

यह सच है कि पिछली सदी की मज़दूर क्रान्तियों की हार के बाद आज चारों ओर निराशा व्याप्त है। क्रान्तिकारी हिरावल शक्तियों को एकजुट करके सर्वहारा क्रान्ति की लहर को फिर से आगे बढ़ाना बेशक एक कठिन काम है। लेकिन जब आज की तबाही से निजात पाने का यही एक रास्ता है तो फिर उस पर आगे बढ़ने के अतिरिक्त और रास्ता ही क्या है। गुलामी और मौत जैसी जिन्दगी का आदी बनने से तो लाख गुना बेहतर है कि हम उस रास्ते पर आगे बढ़ें जो आज कठिन और लम्बा लग रहा है। एक बार फिर नई शुरुआत करनी ही होगी। यह इतिहास का निर्देश है। और इतिहास ही हमें यह विश्वास भी देता है कि पूँजीवाद अजर अमर नहीं है। पूँजीवादी ढांचे के लाइलाज रोग बताते हैं कि अब मेहनतकश की बलशाली भुजा की सांघातिक चोट के बाद इसमें फिर से उठ खड़े होने की ताकत शेष नहीं बचेगी। यदि सर्वहारा क्रान्ति की शक्तियां संगठित होकर इस पर चोट करें तो इक्कीसवीं सदी निश्चय ही मज़दूर क्रान्ति की निर्णायक विजय की सदी होगी।

हिन्दुस्तान के मेहनतकशों को भी अपने इस ऐतिहासिक मिशन को फिर से जानना-समझना है। यही उसकी मुक्ति का एकमात्र संभव मार्ग है।

पार्टी की बुनियादी समझदारी

(पेज 7 से आगे)

सकते और अपने काम में निष्क्रिय और उदासीन हो जाते हैं, जो और कुछ नहीं बस पुरानी गलतियों में और नई गलतियां जोड़ता है। कुछ कॉमरेड आलोचना के बाद दुर्भावना पाल लेते हैं और उन लोगों से बदला लेने की फिराक में रहते हैं जिन्होंने उसकी आलोचना की थी। वे वह काम कर रहे हैं जो पार्टी अनुशासन द्वारा प्रकट तौर पर प्रतिबंधित है, जिससे हमें दृढ़ता के साथ हिफाजत करनी चाहिए। पार्टी काडरों को खास तौर पर अपने साथ सख्ती बरतनी चाहिए और उन्हें जनता और पार्टी सदस्यों के लिए आदर्श का काम करना चाहिए। किसी की आलोचना करते समय, उन्हें सिद्धान्त की मर्यादा तो बनाए ही रखनी चाहिए, मगर साथ ही उन्हें तरीके पर भी ध्यान देना चाहिए: जांच-पड़ताल करो, तथ्यों से सच को निकालो, कभी हल्के ढंग से या अफवाह के नतीजे के रूप में मत बोलो या काम मत करो, या बिना वजह किसी को फटकारो मत। पार्टी सदस्यों और जनता द्वारा की गई आलोचनाओं को लेकर, उनके मन में सर्वहारा विशालता होनी चाहिए, उन्हें उन आलोचनाओं को विनम्रता के साथ सुनना चाहिए, दूसरों के सुझावों से नतीजे निकालने चाहिए, उसमें से अपनी राजनीतिक शिक्षा की सामग्री निकाल लेनी चाहिए, अपनी कमियों और गलतियों को सही करना चाहिए और अपना काम अच्छी तरह करना चाहिए।

आलोचना और आत्मालोचना को सही ढंग से चलाने के लिए हमें अपनी "चीरफाड़" के काम को कड़ाई के साथ करना चाहिए। अध्यक्ष माओ सिखाते हैं: **"सर्वहारा वर्ग और क्रांतिकारी जनता द्वारा दुनिया को बदलने के संघर्ष में निम्न चीजें शामिल है। वस्तुगत दुनिया को बदलना और साथ ही अपनी आत्मगत दुनिया को बदलना–अपनी संज्ञानात्मक क्षमता को बदलना और आत्मगत और वस्तुगत दुनिया के बीच के सम्बन्धों को बदलना।"** (माओ त्से तुङ, संकलित रचनाएं, खण्ड-1, "व्यवहार के बारे में", पृ-308, अंग्रेजी संस्करण) अपनी आत्मगत दुनिया को बदलने के लिए पहले हमें कड़ाई के साथ अपनी "चीर-फाड़" करनी चाहिए। सभी चीजों में, एक दो में बंटता है। जब हम अपनी जांच करते हैं, तब भी यह सही है: जहां अपनी ताकत और उपलब्धियों पर विचार करना जरूरी है, वहीं हमें अपनी कमजोरियों और कमियों को तो और अच्छे से दिमाग में बैठा लेना चाहिए। नियमित रूप से अपनी कमियों और गलतियों पर लगाम लगाकर ही हम कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य अपनी विवेकपूर्ण और विनम्र कार्यशैली को हमेशा कायम रख सकते हैं, और अपने आप को सही ढंग से समझ सकते हैं ताकि हम अपने असली मोल को आंक सकें। अगर हम स्वयं को ही नहीं जानते, तो हम अपने ऊपर 'एक दो में बंटता है' के सिद्धान्त को लागू नहीं कर सकते; अगर हम सिर्फ अपनी उपलब्धियों को देखते हैं और अपनी कमियों को नहीं तो हमारा अंधेपन का शिकार हो जाना पक्का है। अगर हम अपनी कमियों और गलतियों का विश्लेषण नहीं करते और उनका पूरी तरह खात्मा नहीं करते तो हम अपना और क्रांति का ही नुकसान करेंगे। केवल नियमित और सचेतन तौर पर आलोचना और आत्मालोचना को लागू करके ही हम प्रशंसाओं के बावजूद घमण्डी होने से बच सकते हैं, जीतें हासिल करते वक्त भी अपनी कमियां याद रख सकते हैं, सफलता पाकर भी न तो उद्दण्ड और न ही असफलता से निरुत्साहित हो सकते है, हमेशा साफ-दिमाग और क्रांतिकारी संघर्ष के लिए उच्च क्रांतिकारी भावना और बलशाली इच्छा से भरे हुए बने रह सकते हैं, क्रांति को जारी रखने की राह पर कभी रुक नहीं सकते और सर्वहारा के अगुआ तत्व अपने नाम के अधिकारी बन सकें, इसके लिए खुद को प्रशिक्षित कर सकते हैं। (क्रमश:)

अगले अंक से नया अध्याय–सर्वहारा के क्रान्तिकारी ध्येय के लिए उत्तराधिकारियों का प्रशिक्षण

विशेष सामग्री

(अट्ठाइसवीं किस्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय - 9

पार्टी की "तीन महान कार्यशैलियाँ"

एक क्रान्तिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रान्ति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी क्रान्ति का रास्ता छोड़ संसदीय रास्ते पर चलने वाली नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रान्ति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सबसे ऊपर है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी 2001 के अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किश्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में अट्ठाइसवीं किस्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गई श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गई थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है। – सम्पादक

आलोचना और आत्मालोचना को लागू करने की कार्यशैली

आलोचना और आत्मालोचना वे पैने हथियार होते हैं जिनसे पार्टी की इमारत को विचारधारात्मक रूप से मजबूत बनाना होता है, इसकी एकता का सुदृढ़ीकरण करना और इसकी लड़ने की क्षमता को बढ़ाना होता है। वस्तुगत रूप में पार्टी के भीतर अंतरविरोध मौजूद होते हैं। वे पार्टी के भीतर समाज में माजूद वर्ग अंतरविरोधों और पुराने और नए के बीच के अंतरविरोधों के प्रतिबिम्ब होते हैं। आलोचना और आत्मालोचना ही वह बुनियादी तरीका होता है जिससे सही ढंग से पार्टी के अन्दरूनी संघर्ष को चलाया जाता है और पार्टी के अन्दरूनी अंतरविरोधों का समाधान किया जा सकता है। समाजवाद के सम्पूर्ण ऐतिहासिक कालखण्ड के दौरान, चूंकि वर्ग,वर्ग अंतरविरोध और वर्ग संघर्ष अस्तित्वमान रहते हैं, बुर्जुआ वर्ग और दूसरे शोषक वर्गों के पुराने विचार, पुरानी संस्कृति और पुरानी आदतें हमारी पार्टी के सदस्यों को प्रभावित करती हैं और हर दिन,हर पल अंदर ही अंदर इसे खोखला बनाती रहती हैं। बुर्जआ वर्ग की राजनीतिक धूल-गर्द और कीटाणुओं द्वारा हमारी पार्टी के शरीर में लगी छूत से लड़ने, और बुर्जुआ विचारों और अन्य शोषक वर्गों के विचारों द्वारा पार्टी सदस्यों के भ्रष्टीकरण का प्रतिरोध करने के लिए, हमें सक्रिय विचारधारात्मक संघर्ष चलाना चाहिए और सर्वहारा विचारधारा द्वारा समस्त गैरसर्वहारा विचारों को हराना चाहिए। अंतरपार्टी संघर्षों को सही तरीकों से ही संचालित किया जाना चाहिए। जनता के बीच विचारधारात्मक समस्याओं के मामले में, हमें कतई गाली-गलौज का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए, न ही शारीरिक बल प्रयोग या हथियारों का इस्तेमाल करना चाहिए। इन विवादों को हल करने के लिए, हमें केवल वाद-विवाद चलाने, उनको समझाने-बुझाने, आलोचना और आत्मालोचना के तरीके अपनाने चाहिए। हमें इस चीज पर ध्यान देना चाहिए कि आलोचना और आत्मालोचना का इस्तेमाल सकारात्मक चीजों को विकसित करने, कमियों से पार पाने, गलतियों को सही करने, और इस प्रकार एक सही लाइन के आधार पर पार्टी की एकता को मजबूत बनाने और सुदृढ़ीकरण करने के लिये किया जाता है।

आलोचना और आत्मालोचना कम्युनिस्टों के लिए विचारधारात्मक रूप में **"बासी से पिण्ड छुड़ाओ और ताजादम को अन्दर लाओ"** का और उनके विश्व दृष्टिकोण को एक नए सांचे में ढालने का अपरिहार्य हथियार है। चूंकि हमारी पार्टी के सदस्य अलग-अलग वर्गों से आते हैं, जनता के विभिन्न स्तरों से आते हैं और एक ऐसे समाज में रहते हैं जहाँ वर्ग मौजूद हैं, इसलिए बुर्जआ विचार और पुरानी आदतों की शक्ति लगातार हमारे पार्टी सदस्यों को प्रभावित करती है और पार्टी की कतारों में जंग लगाती रहती है। कई कॉमरेडों के मन में, गैर-सर्वहारा विचार अभी भी एक हद तक बने हुए हैं। सिर्फ आलाचना और आत्मालोचना के हथियार पर अपनी पकड़ बनाकर और **"बासी से पिण्ड छुड़ाने और ताजादम को अन्दर लाने"** के लिए जीतोड़ मेहनत करके ही शायद हम विभिन्न गैर-सर्वहारा विचारों से संघर्ष कर सकते हैं और बुर्जुआ विचारधारा और अन्य सभी शोषक वर्गों की विचारधारा से होने वाले भ्रष्टीकरण का डटकर सामना कर सकते हैं। इसके अलावा, चूंकि वस्तुगत दुनिया के बारे में हमारा ज्ञान अनिवार्यत: सीमित है, इसलिए अपने कामों में कमियों और गलतियों से बच पाना मुश्किल है। हमारे काम में सामने आ रही गलतियों और कमियों को सामने लाने के लिए आलोचना और आत्मालोचना का नियमित व्यवहार हमें लगातार आगे बढ़ते रहने के लिए आदर्शवाद के सफाए और अपने अनुभवों के समाहार के काबिल बनाएगा। यह हमें अपना काम और बेहतर ढंग से करने और पार्टी और जनता के लिए और महान योगदान देने में सक्षम बनाएगा।

अध्यक्ष माओ ने हमेशा आलोचना ओर आत्मालोचना को काफी महत्वपूर्ण माना है। अपने लेख **पार्टी में गलत विचारों को सुधारने के बारे में** वह बताते हैं: **"पार्टी के भीतर होने वाली आलोचना पार्टी संगठन को मजबूत बनाने और इसकी लड़ने की क्षमता को बढ़ाने का एक हथियार है।"** (माओ त्से-तुङ, **संकलित रचनाएं**,खण्ड-1, "पार्टी में गलत विचारों को सुधारने के बारे में," पृ-110, अंग्रेजी संस्करण) 1942 में येनान में हुआ शुद्धीकरण आंदोलन मार्क्सवादी शिक्षा का एक सर्वतोमुखी आंदोलन तो था ही, साथ ही एक बड़े पैमाने पर आलोचना और आत्मालोचना का भी अभियान था। पूरे देश की मुक्ति के बाद हमारी पार्टी ने एक बार फिर कई शुद्धीकरण आंदोलनों का नेतृत्व किया। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान लाखों-लाख की संख्या में जनता ने पूंजीवादी रास्ता पकड़ने वाले सत्ता में बैठे मुट्ठी-भर पार्टी जनों को बेनकाब करने के लिए विचारों के बेरोकटोक प्रचार, बड़े चित्राक्षरों वाले पोस्टरों, महान बहसों और क्रांतिकारी तजुर्बों के व्यापक आदान-प्रदान के हथियारों का इस्तेमाल किया। इस तरह से उन्होंने ल्यू शाओ ची और लिन पियाओ के नेतृत्व वाले दो बुर्जुआ हेडक्वार्टर्रों को तहस-नहस कर दिया और काम में हमारी गलतियों और कमियों का खुलासा किया और उनकी आलोचना की। इस तरह से उन्होंने पार्टी की एकता को शानदार तरीके से बढ़ाया। लिन पियाओ की आलोचना और काम करने के तरीके के शुद्धीकरण के लिए चले आन्दोलन के जरिए, और लिन पियाओ के पार्टी-विरोधी गिरोह के क्रांति-विरोधी अपराधों और संशोधनवादी छलावों की आलोचना के जरिये, सम्पूर्ण पार्टी सदस्यों ने दो लाइनों के संघर्ष में अपने अनुभव को काफी बढ़ाया, आलोचना और आत्मालोचना की बावत अपनी चेतना को ऊपर उठाया और नतीजतन आलोचना और आत्मालोचना की हमारी पार्टी की गौरवशाली परम्परा मजबूत हुई।

सही ढंग से आलोचना और आत्मालोचना चलाने के लिए पहले हमें कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ "एकता-आलोचना-एकता" के सिद्धान्त को लागू करना चाहिए। इसका मतलब यह है कि हमें एकता की कामना के साथ शुरूआत करनी चाहिए और आलोचना और संघर्ष के जरिए सच और झूठ के बीच एक स्पष्ट भेद करना चाहिए और इस नए आधार पर, एक नई एकता तक पहुंचना चाहिए। आलोचना और आत्मालोचना को चलाते हुए, हमें दो गलत रवैयों से जरूर लड़ना चाहिए: पहला वह जो बिना आलोचना किये या गलतियों और कमियों से लड़े केवल एकता की बात करता है। जो साथी यह रवैया अपनाते हैं वो अन्तरविरोधों से बचना चाहते हैं। संघर्ष के समक्ष वे अपना मुह बंद रखते हैं, गलत विचारों को सुनने पर भी उनका खण्डन नहीं करते और पार्टी को नुकसान पहुंचाने वाली कार्रवाइयों को देखकर भी विरोध नहीं करते जो भी परिस्थितियां हों वे कोई अवस्थिति नहीं ग्रहण करते, ताकि और पेचीदगी न पैदा हो।" इस तरीके से "अक्लमंद बूढ़े" की तरह व्यवहार करना बिल्कुल गलत है। दूसरा रवैया यह है जो सिर्फ आलोचना और संघर्ष की बात करता है और गलतियां करने वाले साथियों के साथ एकाकार होने की कोई इच्छा नहीं रखता। जो साथी यह रवैया अपनाते हैं, अविवेकपूर्ण फैसले करते हैंऔर अटकलपच्चू आरोप लगाते हैं और यह पद्धति न केवल किसी समस्या को हल करने पाने में नाकाबिल हैं, बल्कि अलग-अलग कॉमरेडों और पार्टी की एकता को नुकसान पहुंचाती हैं। अध्यक्ष माओ ने हमें सिखाया है: **"वक्तव्य तथ्यों पर आधारित होने चाहिए और आलोचना राजनीति पर केन्द्रित होनी चाहिए।"** (माओ त्से-तुङ, संकलित रचनाएं, खण्ड-1, "पार्टी में गलत विचारों को सुधारने के बारे में",पृ-112, अंग्रेजी संस्करण) आलोचना और आत्मालोचना करते समय हमें सच को तथ्यों से निकालना चाहिए और तर्कपूर्ण दलीलों से लोगों को सहमत करना चाहिए; हमें यह काम नियमित रूप से और सही वक्त पर करना चाहिए, समस्याओं के अम्बार लगने और बेहद गम्भीर हो जाने का इंतजार नहीं करना चाहिए और फिर उन्हें एक ही बार में सही कर डालने का प्रयास नहीं करना चाहिए। इस पद्धति का व्यवहार भारी नुकसानों की तरफ ले जा सकता है, जबकि सही वक्त पर हस्तक्षेप करने का अर्थ होता है नुकसानों को घटाया जा सकता है। हमें अन्तर्भेदी आलोचना और आत्मालोचना के हथियार का इस्तेमाल कर संगठन के पूरे जीवन का शुद्धीकरण करना चाहिए ताकि पार्टी का सांगठनिक जीवन सक्रिय बना रहे। पार्टी संगठन के नेतृत्वकारी कॉमरेडों को सभी स्तरों पर संगठन के जीवन में साधारण सदस्यों के समान भाग लेना चाहिए; उन्हें दूसरे सदस्यों के विचारों और आलोचना को विनम्रता से अवश्य सुनना चाहिए, नियमित तौर पर आत्मालोचना रखनी चाहिए और श्रेष्ठतम संभव काम के लिए संघर्ष करना चाहिए।

सही ढंग से आलोचना और आत्मालोचना चलाने के लिए, जो आलोचना करते हैं उन्हें यह सिद्धान्त लागू करना चाहिए: "जो भी तुम जानते हो उसे कहो, ओर बिना किसी शर्त के कहो" अगर उनके पास देने के लिए कुछ सुझाव हों, तो उन्हें दे देने चाहिए, अगर वे कमियों और गलतियों को देखें, तो उन्हें उनकी आलोचना करनी चाहिए। साथ ही उन्हें उनके रवैये, पद्धति और नतीजों पर सावधानी के साथ ध्यान देना चाहिए। जहां तक उनका सवाल है जिनकी आलोचना हो रही है, उन्हें पार्टी के उद्देश्य को दिमाग में रखना चाहिए और सिद्धांतों के मुताबिक व्यवहार करना चाहिए: "बोलने वाले को दोष मत दो बल्कि उसके शब्दों से सावधान हो जाओ" और "अगर तुमने गलतियां की हैं तो उन्हें सही करो, अगर नहीं की हैं तो उनसे बचो" और दूसरों द्वारा की जाने वाली आलोचना को विनम्रता से सुनो। हमें सच स्वीकार करने की और अपनी गलतियां सही करने की हिम्मत करनी ही चाहिए। कौन आलोचना करता है इससे बेलिहाज हमें उसे मानना चाहिए, अगर वह सही है। अगर दूसरों द्वारा की जाने वाली आलोचना असलियत से मेल नहीं भी खाती या कोई विश्लेषण अथवा आलोचना बहुत सचेतन तौर पर नहीं की गई है, तो भी हमें उसे धैर्यपूर्वक सुनना जरूर चाहिए, उसमें से जो सही हो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए, और आलोचक को दोष नहीं देना चाहिए और इसे आलोचना खारिज करने की आड़ के तौर पर तो बिल्कुल इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। हमें न तो चापलूसी पर मुस्कराना चाहिए, न ही आलोचना होने पर नाराज होना चाहिए या ऐसे बाघ की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिए "जिसकी पीठ को छुआ तक न जा सके"। कुछ कॉमरेड जो गलतियां करते हैं और उनकी आलोचना होती है, वे सकारात्मक तरीके से उससे सबक नहीं लेते, उल्टे वे सोचते हैं कि अब वे अपना "सिर ऊँचा नहीं रख

(पेज 6 पर जारी)

तुम्हारे सदाचार की क्षय

• राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन सच्चे अर्थों में जनता के लेखक थे। वह आज जैसे कथित प्रगतिशील लेखकों सरीखे नहीं थे जो जनता के जीवन और संघर्षों से अलग-थलग अपने-अपने नेहनीड़ों में बैठे कागज पर रोशनाई फिराया करते हैं। राहुल सांकृत्यायन हमेशा जनता के संघर्षों का मोर्चा हो या सामन्तों-जमींदारों के बर्बर शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ किसानों की लड़ाई का मार्चा हो, वह हमेशा अगली कतारों में रहे। अनेक बार जेल गये। यातनाएं झेलीं। जमींदारों के गुर्गों ने उनके ऊपर कातिलाना हमला भी किया लेकिन आजादी, बराबरी और इंसानी स्वाभिमान के लिए न तो वह कभी संघर्ष से पीछे हटे और न ही उनकी कलम रुकी। राहुल सांकृत्यायन यूरोपीय पुनर्जागरण काल के उन महामानवों सरीखे महामानव थे जो एक हाथ में कलम और दूसरे हाथ में तलवार लेकर लड़ते थे।

दुनिया की छत्तीस भाषाओं के जानकार राहुल सांकृत्यायन की अद्‌भुत मेधा का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं, साहित्य की अनेक विधाओं में उनको महारत हासिल थी। इतिहास, दर्शन पुरातत्व, नृतत्वशास्त्र, साहित्य, भाषा, विज्ञान आदि विषयों पर वह अधिकारपूर्वक लिखते थे। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, ललित निबन्ध, जीवनी, आत्मकथा, डायरी आदि साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अधिकारपूर्वक लेखनी उठायी। वोल्गा से गंगा, भागो नहीं दुनिया को बदलो, दर्शन दिग्दर्शन, मानव समाज, वैज्ञानिक भौतिकवाद, जय यौधेय, सिंह सेनापति, दिमागी गुलामी, तुम्हारी क्षय, साम्यवाद ही क्यों, बाइसवीं सदी आदि पचास से अधिक रचनाएं उनकी महान प्रतिभा का परिचय अपने आप करा देती हैं।

लेकिन राहुल जी के लिए ज्ञान कोई निजी सम्पत्ति नहीं के लिए कलम को वह हथियार के रूप में इस्तेमाल करते थे। उनका मानना था कि "साहित्यकार जनता का जबर्दस्त साथी, साथ ही वह उसका अगुआ भी हैं वह सिपाही भी है और सिपहसालार भी।"

राहुल सांकृत्यायन का समूचा जीवन और कर्म एक सतत प्रवाहमान धारा के समान था। गति उनके लिए जीवन का दूसरा नाम था और गतिरोध एवं मृत्यु जड़ता। इसीलिए बनी-बनायी लीकों पर चलना उन्हें कभी गवारा नहीं हुआ। वह नयी राहों के खोजी थे। यह अकारण नहीं था कि घुमक्कड़ी उनके स्वाभाव में रच-बस गयी थी। लेकिन घुमक्कड़ी उनके लिए सिर्फ भूगोल की पहचान करना नहीं थी। वह सुदूर देशों की जनता के जीवन व उसकी संस्कृतियों से उसकी जिजीविषा से जान-पहचान करने के लिए यात्राएं करते थे।

समाज को पीछे की ओर धकेलने वाले हर प्रकार के विचार, रुढ़ियों, मूल्यों-मान्यताओं-परम्पराओं के खिलाफ उनका मन गहरी नफरत से भरा हुआ था। उनका समूचा जीवन व लेखन इनके खिलाफ विद्रोह का जीता-जागता प्रमाण है। इसीलिए उन्हें महाविद्रोही भी कहा जाता है। जनता के ऐसे ही सच्चे सपूत महाविद्रोही राहुल सांकृत्यायन की एक पुस्तिका 'तुम्हारी क्षय' बिगुल के पाठकों के लिए हम धारावाहिक रूप से प्रकाशित कर रहे हैं। राहुल की यह निराली रचना आज भी हमारे समाज में प्रचलित रूढ़ियों के खिलाफ समझौताहीन संघर्ष की ललकार है।

-सम्पादक

तुम्हारे इतिहासाभियान और संस्कृति की क्षय

'इतिहास'- 'इतिहास'- 'संस्कृति'- 'संस्कृति' बहुत चिल्लाया जाता है। मालूम होता है, इतिहास और संस्कृति सिर्फ मधुर और सुखमय चीजें थी। पचीसों बरस का अपने समाज का तजुरबा हमें भी तो है। यही तो भविष्य की सन्तानों का इतिहास बनेगा? आज जो अन्धेर हम देख रहे है। क्या हजार साल पहले वह आज से कम था? हमारा इतिहास तो राजाओं और पुरोहितों का इतिहास है। जो कि आज की तरह उस जमाने में भी मौज उड़ाया करते थे। उन अगणित मनुष्यों का इस इतिहास में कहाँ जिक्र है जिन्होंने कि अपने खून के गारे से ताजमहल और पिरामिड बनायें, जिन्होंने कि अपनी हड्डियों की सज्जा से नूरजहाँ को अतर से स्नान कराया, जिन्होंने कि लाखों गर्दनें कटा कर पृथ्वीराज के रनिवास में संयोगिता को पहुँचाया? उन अगणित योद्धाओं की वीरता का क्या हमें कभी पता लग सकता है जिन्होंने कि सन् सत्तावन के स्वतंत्रता-युद्ध में अपनी आहुतियाँ दी? दूसरे मुल्क के लुटेरों के लिए बड़े-बड़े स्मारक बने, पुस्तकों में उनकी प्रशंसा का पुल बाँधा गया। गत महायुद्ध में ही करोड़ों ने कुर्बानियाँ दी, लेकिन इतिहास उनमें कितनों के प्रति कृतज्ञ है?

इतिहास हमारे समाज की पुरानी बेड़ियों को मजबूत करता है। इतिहास हमारी मानसिक स्वतन्त्रता का सबसे बड़ा शत्रु है। इतिहास हमारी पुरानी दुश्मनी और अनबनों को ताजा करता रहता है। सहस्राब्दियों से मनुष्यता का घोर शत्रु सिद्ध हुआ धर्म, बहुत कुछ इतिहास के आधार पर टिका है। विश्वामित्र हों चाहें वशिष्ठ, मनु हों चाहे याज्ञवल्क्य, व्यास हों चाहे पतञ्जलि, नानक हों चाहे कबीर, मूसा हों चाहे ईसा-सभी पचासों बरस इस धरती पर जीते रहे। न जाने कितनों के दिल को उन्होंने दुखाया होगा, न जाने कितनों के हक को छीना होगा, न जाने कितने दास-दासी खरीद कर जिन्दगी भर उनसे पशु की तरह काम लेते रहे होंगे। अपने मालिकों और अन्नदाताओं की चापलूसी में जाने क्या-क्या कुकर्म उन्होंने किये होंगे। सफल लुटेरों और खूनियों का आसमान पर चढ़ाने की जो प्रवृत्ति देखी जाती है, उससे मालूम होता है कि इतिहास की वीरपूजा में भी इसका बहुत बड़ा अंश रहा होगा।

हिन्दुओं के इतिहास में राम का स्थान बहुत ऊँचा है। आजकल के हमारे बड़े नेता, गांधीजी, मौके-ब-मौके रामराज्य की दुहाई दिया करते थे। वह रामराज्य कैसा होगा जिसमें कि बेचारे शूद्र शम्बुक का सिर्फ यही अपराध था कि वह धर्म कमाने के लिए तपस्या कर रहा था और इसके लिए राम जैसे अवतार और धर्मात्मा राजा ने उसकी गर्दन काट ली? वह रामराज्य कैसा रहा होगा जिसमें किसी आदमी के कह देने मात्र से राम ने गर्भिणी सीता को जंगल में छोड़ दिया? रामराज्य में दास-दासियों की कमी न थी। अट्ठारहवीं-उन्नीसवीं सदी तक दुनिया में दास-प्रथा कितनी क्रूरता के साथ प्रचलित थी, इसका हमें काफी ज्ञान है। उस वक्त स्वेच्छापूर्वक अपने को और अपनी सन्तान को बेचा ही नहीं जाता था, बल्कि समुद्र और बड़ी नदियों के किनारे के गाँवों में तो आदमियों को पकड़ ले जाने के लिए बकायदा हमले हुआ करते थे। डाकू गाँव पर छापा मारते थे और धन के साथ-साथ वहाँ के काम करने लायक आदमियों को पकड़ ले जाते थे। हर साल हजारों इस तरह के गुलाम पोर्तुगीज डाकू पकड़ कर बर्मा के अराकान प्रदेश में बेचा करते थे। रामराज्य में यदि इस तरह की लूट और डाकेजनी न रही होगी तो दास-प्रथा तो जरूर ही थी। अभी दस ही बारह साल हुए हैं जबकि हिन्दुओं के अभिमान की जगह नेपाल राज ने अपने यहाँ दास-प्रथा का अंत किया। मिथिला में अब भी कितने घरों में वे कागज हैं जिनमें बहिया (दास)के क्रय-विक्रय दर्ज हैं। दरभंगा जिले के तरौनी गाँव (थाना बहेड़ा) में दिगम्बर झा के परदादा ने कुल्ली मैंड़र के दादा के किसी दूसरे मालिक से खरीदा था और दिगम्बर झा के दादा ने पचास रुपये के फायदे के साथ उसे बेच दिया। अभी तीन ही पीढ़ी पहले अंग्रेजी राज तक में यह प्रथा मौजूद थी और सच्चे धार्मिक हिन्दू हों चाहे मुसलमान, दोनों जब अपनी मनुस्मृतियों और हदीसों में दासों के ऊपर मालिकों के हक के बारे में पढ़ते हैं तो उनके मुँह में पानी भर आये बिना नहीं रहता।

आइये, रामराज्य की दास-प्रथा की एक झाँकी लीजिए। एक साधारण बाजार है जिसमें सिर्फ दास-दासियों की बिक्री होती है। लाखों वृक्षों का बाग है। खाने-पीने की चीजों की दूकानें सजी हुई हैं। भेड़-बकरियों और शिकार किये जानवरों के अतिरिक्त उच्च वर्ण के आर्यों के भोजन तथा मधुपर्क के लिए गोमांस खास तौर से तैयार करके बेचा जा रहा है। जगह-जगह सफेद दाढ़ी वाले ऋषि, दूसरे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने पड़ाव डाले पड़े हुए हैं। कोई नया दास या दासी खदीदने आया है। किसी के दिन कुछ बिगड़ गये है, इसलिए वह अपने दासों या दासियों को बेच कर कुछ नकद जमा करना चाहता है। कुछ सिर्फ इस ख्याल से अपने दास-दासियों को मेले में लाये हैं कि उन्हें बेच कर 'नया' कर लिया जाये। कुछ बड़े व्यापारी ऐसे भी है जो झटपट बेचकर चले जाने की इच्छा रखने वालों की आसानी के लिए के लिए सस्ते में दास-दासी खरीद लेते हैं। और अधिक मुनाफे के साथ बेचते हैं। स्वामियों ने महीनों पहले मेले में चलने का निश्चय कर लिया था। उन्होंने अपने दास-दासियों को खूब अच्छा खाना देना शुरू किया था। जिससे की मांस और चरबी से उनकी हड्डियां ढक जायें और बाजार में अधिक दाम आ सकें। उनके सफेद बालों को काला रंगा गया है और मेले में कपड़े-लत्ते से अच्छी तरह सवाँरकर उनकी हाट लगायी गयी है। कहीं-कहीं आदमी अपने एक-आध दास या दासी को लेकर बैठे हैं और कहीं-कहीं सौ-सौ दो-दो सौ की पाँत लगी हुई है। खरीदारों की भीड़ है। खरीदने वाले कहते है-अब की बाजार बहुत मँहगा रहा, पिछले साल अठारह बरस की हट्टी-कट्टी सुन्दरी दासी दस रुपये में मिल जाती थी, अब की बार वह तीस में भी हाथ धरने नहीं देते। एक आदमी को दासी खरीदनी है, लेकिन पैसे उसके पास कम हैं। वह एक चालीस बरस के सौदे के पास पहुँचता है। दासी के तिहाई बाल यद्यपि सफेद हो गये थे, लेकिन उन्हें रंग कर काला किया था। मालिक की खुशकिस्मती समझिए कि दासी के दाँत सभी मजबूत थे। खरीदार ने पास जाकर उसके दाँत देखे-बिल्कुल दुरुस्त। आँखें देखी-कोई फर्क नहीं। कान देखें-सुन सकती है। हाथों को उठा और ठोंक कर देखा-कमजोर नहीं है। चला कर देखा-पैर भी दुरुस्त हैं। पूछ- "वशिष्ठ जी! आप की दासी बूढ़ी तो हो गयी है। लेकिन खैर, हमारे यहाँ काम हल्का है, बतलाइये तो मूल्य क्या है?"

वशिष्ठ-"गौतम जी, आप कह रहे हैं। अभी तो यह बीस बरस की छोकरी है। आप ने देखा नहीं कि इसके हाथ पैर कितने मजबूत हैं, कितनी सुन्दरी है, दस साल में दस इसके लड़के पैदा हो जायेंगे। दूना दाम तो एक ही लड़के से निकल आयेगा। हम आपसे मूल-भाव करना नहीं चाहते। पचास रूपया हमें मिल रहा था। खैर, आप परिचित हैं आपको दस रूपया कम करके दे देंगे।"

गौतम-आप तो बहुत कड़ा दाम माँग रहे हैं। बाल को काला कर देने और दो महीने के खिलाने-पिलाने से .... यह न समझिये कि मैं नहीं जानता ... यह पचास साल की बूढ़ी है। मुझे हल्का सौदा लेना है, यदि आप दाम-काम ठीक करें तो इसे ले लूँ।

वाशिष्ठ-आप मेले के दूसरे आदमियों की तरह मुझे भी समझ रहे हैं? इसी की बहन को मैंने सौ रुपये में अयोध्या के महाराज रामचन्द्र के लिए बेचा हैं आजकल महाराज यज्ञ कर रहे हैं, दक्षिणा में वह हर एक ऋषि को एक-एक तरुण सुन्दरी दासी देना चाहते हैं। देखा नहीं, इस साल दासियों का भाव बहुत चढ़ गया है? अच्छा जाइए, तीस ही रुपये दे दीजिए, हमें भी घर लौटने की जल्दी है। यह दासी ऐसी-वैसी नहीं है, यह खूब नाचना-गाना जानती है। काली! जरा एक गीत तो सुना दे।

काली ने एक गीत सुनाया और नाच के भी एक-दो तर्ज दिखलायें अन्त में पन्द्रह रुपये पर सौदा पटा।

लोग अपने-अपने दासों को घर ले जा रहे हैं। कितनी दासियों के बच्चे बिक कर सैकड़ों कोस दूर पहुँच गये हैं। कितनों के प्रेमी हमेशा के लिए छूट गये हैं। बच्चों और प्रेमियों के इस बिछोह के कारण किसी काम में उनका मन नहीं लगा रहा है और नये मालिक उनसे काम लेने को उकता रहे हैं। दो-चार दिन जो नरमी देखी गई उसे खत्म करके अब जरा-जरा-सी शिकायत पर-दासियों पर कोड़े पड़ रहे हैं। दासों की जान तक मार डालने में मालिकों कोई जबर्दस्त सजा पाने का भय नहीं हैं मालिक उनके प्रति वही ख्याल रखते हैं जो कि अपने पशुओं के लिए।

यह है रामराज्य में मनुष्यों के एक भाग का जीवन! और, यह है रामराज्य में मनुष्य का मोल! इसी पर हमको नाज है! ऋषियों की दया और सहृदयता का गुण तो हम देते नहीं जिन ऋषियों के आश्रमों के आस-पास मनुष्य इस प्रकार गुलाम बनाकर रक्खे जाते थे, जिन ऋषियों का स्वर्ग, वेदान्त और ब्रह्म पर बड़े-बड़े व्याख्यान और सत्संग करने की फुर्सत थी जो दान और यज्ञ पर बड़े-बड़े पोथे लिख सकते थे, क्योंकि इससे उनको और उनकी सन्तानों का फायदा था, परन्तु मनुष्यों के ऊपर पशुओं की तरह होते इन अत्याचारों को आमूल नष्ट करने के लिए उन्होंने किसी तरह के प्रयत्न की आवश्यकता न समझी। उन ऋषियों से आज के जमाने के साधारण आदमी भी मानवता के गुण से अधिक भूषित हैं।

संस्कृति का अंग कला है। कला में हमने कहाँ तक सारे समाज का ख्याल रखा और पूराने जामने में भी साधारण जनता कहाँ तक उससे फायदा उठा सकती थी? सहस्राब्दियों से संगीत राजाओं और धनियों की कामुकता को उत्तेजित करने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। संगीत की रुचि मनुष्य में स्वभाविक होती है। सभ्यता के निम्न तल पर रहने वाली जातियों से लेकर सभ्यता के उत्कर्ष की चोटी तक पहुँची हुई जातियों तक सभी में नृत्य का प्रेम देखा जाता है। लेकिन यह हमारा ही देश है जो कि सभ्य कहलाने में दुनिया के सभी देशों से अपने को पहले रखना चाहता है, लेकिन इन दोनों ललित कलाओं को ऐसी निम्न श्रेणी में डाल रखा कि जिनकी दुनिया में मिशाल नहीं । इंग्लैण्ड, अमेरिका और जापान के सुशिक्षित परिवार संगीत और नृत्य-कला को अपने सभ्य जीवन का एक अंग समझते हैं, लेकिन ये चीजें हमारे यहाँ वेश्याओं के लिए रख छोड़ी गई हैं। इस श्रेणी के कारण संगीत और नृत्य-कलायें संभ्रात कुल की स्त्रियों से बहिष्कृत समझी जाती हैं।

हम संस्कृत हैं, हम सभ्य हैं-इस तरह अपने मुँह मियाँ मिट्‌ठू बनने से दुनिया हमें सभ्य नहीं मानेगी। हमारे जीवन का हर एक अंग जिस तहर कुलषित और दिखावट से भरा हुआ है, उस तरह की जाति दुनिया में शायद ही कोई हो। अभी तक तो हमने आदमी की तरह रहना भी नहीं सीखा। पास-पड़ोस की सफाई की अवहेलना में तो हम जानवरों से भी गये-बीते हैं। हिन्दुस्तान के गाँवों जैसे गन्दे गाँव दुनिया के किसी भी देश में खोजने से नहीं मिलेंगे। यह हमारे ही गाँव की खूबी है कि एक अन्धा आदमी भी एक मील पहले से ही हमारे गाँव को पहचान लेता है, जबकि उसकी नाक पाखाने की बदबू से फटने लगती है। सफाई के लिए अपने को लासानी समझने वाले हमारे देश के हिन्दू-मुसलमान पाखाने के लिए किसी प्रबन्ध की कोई जरुरत नहीं समझते। गाँव के पड़ोस के खेत तो इसके लिए हैं ही। कोई भी विदेशी जो एक बार हिन्दुस्तानी गाँव से गुजर जाएगा पास के खेत में अलग-अलग फैले हुए हवा और धूप में सूखते हुए पाखानों को देखेगा, व कैसे समझेगा कि हिन्दुस्तान में आदमी रहते हैं। एक बार मेरे एक जापानी मित्र को, जिनके स्नेहपूर्ण आतिथ्य को पाने का मुझे कई दिनों तक मौका मिला था, भारत आने के लिए लिखा। उन्होंने भी यह इच्छा प्रकट की थी कि मैं भारत के ग्रामीण जीवन को नजदीक से देखना चाहता हूँ। मुझे पत्र पाकर यह चिन्ता हुई कि किन गाँवों में मैं अपने मित्र को ले जाऊँ। सबसे बड़ी दिक्कत मुझे पाखाने और नहाने की मालूम पड़ती थी। हिन्दुस्तान के गाँवों में खुले खेत के अतिरिक्त पाखाने का कोई इन्तजाम नहीं। गाँव की क्या, शहर में भी पचास हजार लगाकर महल बनाने वाले पाखाने के लिए पचास रुपये का "सेप्टिक टैंक" लगाना दण्ड समझते हैं। गुसलखाना तो अंग्रेजों और क्रिस्तानों की चीज है। मेरे तरहुद्द को देखकर एक मित्र ने अपने यहाँ खासतौर से पाखाने और गुसलखाने तैयार करने का इरादा जाहिर किया। खैर, मेरे जापानी मित्र ने अपनी यात्रा स्थगित

(पेज ४१ पर जारी)

'बक़लमे-खुद' स्तम्भ के बारे में चन्द बातें

-सम्पादक मण्डल

इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम ज़िन्दगी की जद्दोजहद में जूझ रहे मज़दूरों और उनके बीच रहकर काम करने वाले मज़दूर संगठनकर्ताओं-कार्यकर्ताओं की साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित करते हैं – कविताएं, कहानियां, डायरी के पन्ने, गद्यगीत आदि-आदि।

इस स्तम्भ की शुरुआत की एक कहानी है। 'बिगुल' के सभी प्रतिनिधियों-संवाददाताओं के अनुभव से यह जुड़ी हुई है। हमने पाया कि जो कुछ पढ़े-लिखे और उन्नत चेतना के मज़दूर हैं, वे गोर्की की 'मां', उनकी आत्मकथात्मक उपन्यास-त्रयी और अन्य रचनाओं को तो बेहद दिलचस्पी के साथ पढ़ते हैं, प्रेमचन्द उन्हें बेहद पसन्द आते हैं, आस्त्रोव्स्की की 'अग्निदीक्षा' और पोलेवेई की 'असली इंसान' ही नहीं, कुछ तो बाल्ज़ाक और चेर्निशेव्स्की को भी मगन होकर पढ़ते हैं। लेकिन जब हम हिन्दी के आज के सिरमौर वामपंथी कथाकारों की बहुचर्चित रचनाएं उन्हें पढ़ने को देते हैं तो वे बेमन से दो-चार पेज पलटकर धर देते हैं। पढ़कर सुनाते हैं तो उबासी या झपकी लेने लगते हैं। यदि उन सबकी राय को समेटकर थोड़े में कहा जाये, तो इसका कारण यह है कि ज्यादातर वामपंथी-प्रगतिशील लेखक आज अपनी रचनाओं में आम आदमी की ज़िन्दगी की, संघर्ष और आशा-निराशा की जो तस्वीर उपस्थित कर रहे हैं, वह आज की ज़िन्दगी की सच्चाइयों से कोसों दूर है। वह या तो ट्रेनों-बसों की खिड़कियों से देखे गये गांवों और मज़दूर बस्तियों का चित्र है, या फिर अतीत की स्मृतियों के आधार पर रची गयी काल्पनिक तस्वीर। नयेपन के नाम पर जो कला का इन्द्रजाल रचा जा रहा है, वह भी आम जनता के लिए बेगाना है। कारण स्पष्ट है। दरअसल इन तथाकथित वामपंथियों का बड़ा हिस्सा "वामपंथी कुलीनों" का है। ये "कलाजगत के शरीफज़ादे" हैं जो प्रायः प्रोफेसर, अफसर या खाते-पीते मध्यवर्ग के ऐसे लोग हैं जो जनता की ज़िन्दगी को जानने-समझने के लिए हफ्ते-दस दिन की छुट्टियां भी उसके बीच जाकर बिताने का साहस नहीं रखते। ये अपने नेहनीड़ों के स्वामी सद्गृहस्थ लोग हैं। ये गरुड़ का स्वांग भरने वाली आंगन की मुर्गियां हैं। ये फर्जी वसीयतनामा पेश करके गोर्की, लू शुन, प्रेमचन्द का वारिस होने का दम भरने वाले लोग हैं।

समय आ रहा है जब क्रान्तिकारी लेखकों-कलाकारों की एकदम नई पीढ़ी जनता की ज़िन्दगी और संघर्षों के ट्रेनिंग-सेण्टरों से प्रशिक्षित होकर सामने आयेगी। इन कतारों में आम मज़दूर भी होंगे। भारत का मज़दूर वर्ग आज स्वयं अपना बुद्धिजीवी पैदा करने की स्थिति में आ चुका है। भारत का यह नया बुद्धिजीवी मज़दूर या मज़दूर बुद्धिजीवी सर्वहारा क्रान्ति की अगली-पिछली पांतों को नई मजबूती देगा।

आज परिस्थितियां ऐसी हैं कि हम अपेक्षा करें कि भारतीय मज़दूर वर्ग भी अपना इवान बाबुश्किन और मक्सिम गोर्की पैदा करेगा। 'बिगुल' की कोशिश होगी कि वह ऐसे नये मज़दूर लेखकों का मंच बने और प्रशिक्षणशाला भी।

इसी दिशा में, पहलकदमी जगाने वाली एक शुरुआती कोशिश के तौर पर इस स्तम्भ की शुरुआत की गयी है। मुमकिन है कि मज़दूरों और मज़दूरों के बीच काम करने वाले संगठनकर्ताओं की इन रचनाओं में कलात्मक अनगढ़ता और बचकानापन हो, पर इनमें जीवित यथार्थ की ताप और रोशनी के बारे में आश्वस्त हुआ जा सकता है। ज़िन्दगी की ये तस्वीरें सच्ची वामपंथी कहानी का कच्चा माल भी हो सकती हैं। और फिर यह भी एक सच है कि हर नयी शुरुआत अनगढ़-बचकानी ही होती है। लेकिन मंजे-मंजाये घिसे-पिटे लेखन से या काल्पनिक जीवन-चित्रण के उच्च कलात्मक रूप से भी ऐसा अनगढ़ लेखन बेहतर होता है जिसमें जीवन की वास्तविकता और ताज़गी हो।

हमारा यह अनुरोध है कि मज़दूर साथी अपनी ज़िन्दगी की क्रूर-नंगी सच्चाइयों की तस्वीर पेश करने के लिए अब खुद कलम उठायें और ऐसी रचनाएं इस स्तम्भ के लिए भेजें। **साथ ही प्रकाशित रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया भी भेजे।**

इस अंक में हम एक मज़दूर कार्यकर्ता जनार्दन की व्यंग्य रचना दे रहे हैं।

व्यंग्य

सपने में "लौहपुरुष" से मुलाकात

• जनार्दन

कुछ दिनों पहले, भोर के समय मैंने एक सपना देखा था। आप सब जानते ही हैं कि भोर के समय देखे गये सपने याद रहते हैं। मुझे भी सुबह उठने पर आश्चर्यजनक रूप से इस सपने का एक-एक दृश्य, एक-एक बात याद थी। हालांकि काहिली मेरा आम स्वभाव है, पर अपने इस स्वभाव के विपरीत उस सुबह मैंने तुरन्त कागज कलम उठाया और देखे गये सपने को एक ही सांस में कागज पर उतार लिया। मेरा यह सपना अगर आपको हकीकत लगे तो कृपया माफ कर दीजिएगा। सपना कुछ इस प्रकार था-

जैसाकि सपनों में अक्सर होता है व्यक्तियों-घटनाओं-स्थानों के आपसी संबंधों के सूत्र जगह-जगह से टूटे होते हैं। व्यक्ति, घटनाएं और स्थान सब एक दूसरे में गड्डमड्ड हो जाते हैं। नींद से जागकर अगर देखे गये सपने के विभिन्न दृश्यों में आप कार्यकारण संबंध तलाशने की कोशिश करेंगे तो निश्चित ही निराशा हाथ लगेगी। जो सपना मैंने देखा उसमें भी यही गड़बड़झाला था।

अचानक मैंने खुद को गृहमंत्री, नये लौहपुरुष, लालकृष्ण आडवाणी के ड्राइंग रूम में खड़ा पाया। देखता क्या हूं कि आडवाणी जी अटल जी से फोन पर बतिया रहे थे। वह कुछ उलाहना देने की कोशिश कर रहे थे। "हलो... क्या बात है?" आडवाणी जी खीझते हुए बोले- "अजी बात क्या है, हद कर दी है आपने! एक तो आप ठहरे कवि, ऊपर से रसिक मिजाज, राजनीति के जोड़-तोड़ से हटकर कब आप कविता या तुकबंदी करने लगेंगे कुछ कहा नहीं जा सकता। साथ ही, बीच-बीच में शैम्पेन के साथ मुक्त चिन्तन के लिए भी आपको समय चाहिए।" अटल-"हें हें हें---अरे भई मामला क्या है?" आडवाणी जी का बरसना जारी रहा, "क्या आपको नहीं मालूम कि पाकिस्तान का मामला गर्म है? अयोध्या में खुदाई शुरू करवानी है, मोदी का नया प्रोजेक्ट लम्बित पड़ा है। लोकसभा चुनाव नजदीक आ रहा है। यदि चुनाव से पहले यह सब नहीं हुआ तो? और आप हैं कि मनाली में छुट्टी मना रहे हैं।"

अचानक बात खत्म करते हुए- "एक मिनट बाद में आपको दुबारा फोन करते हैं।" रिसीवर रखकर आडवाणी जी मेरी तरफ मुखातिब हुए और बोले, "कहो क्या बात है? मैंने कहाकि श्रीमान जी मैं बड़ी आफत में हूं, मैंने सोचा आप गृहमंत्री हैं, अत: अपने घर (गृह) के बारे में आप ही से बात करूं।"

"मेरे फैक्ट्री मालिक ने मुझे परमानेन्ट से ठेके पर कर दिया है। मेरा छोटा बेटा महीनों से बीमार पड़ा है, बड़ा लड़का बेरोजगार है, लड़की की शादी करनी है। लगभग यही हाल मेरे साथ काम कर रहे सभी मजदूरों का है। क्या करूं?" आडवाणी जी-"धैर्य रखो, और

ज्यादा मेहनत से काम करो।

फिलहाल इस समय कुछ किया नहीं जा सकता, क्योंकि सीमा पर युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं, देश भयंकर आर्थिक तंगी से जूझ रहा है, सार्स जैसी बीमारियों से पूछो देश परेशान है।" "श्रीमान जी, मेरा लड़का बी.ए.पास है, रोजगार के लिए मारा-मारा फिर रहा है।

उन्होंने (आडवाणी) फिर नसीहत देनी शुरू की- "नौजवानों को प्रयोगधर्मा होना चाहिए, इसके लिए उसे प्रयोगशाला के विभागाध्यक्ष आचार्य मोदी जी से संपर्क करना चाहिए। क्योंकि उन्होंने हाल ही में न्यूटन के तीसरे नियम का सत्यापन किया है। अभी और चीजों का गहराई से अध्ययन करना चाहिए---" मैंने बीच में ही टोका। कहा, "पढ़ता तो है श्रीमान, विज्ञान, गणित, हिन्दी, अंग्रेजी, सब पढ़ता है। आज अभी में देखकर आया हूं। प्रेमचन्द को पढ़ रहा था। आडवाणी जी मंद-मंद मुस्कुराये और मुस्कान को मूंछों में टांगकर बोले- "प्रेमचन्द का जमाना लद गया है। इतिहास, विज्ञान जैसी ढेर सारी चीजें पुरानी पड़ गयी हैं और कबाड़ हो चुकी हैं, उससे कहो नये जमाने की नयी चीजें पढ़ें। जैसे-मृदुला सिन्हा का उपन्यास, जसवंत सिंह का अर्थशास्त्र, मुरली मनोहर जोशी का इतिहास और विज्ञान, तोगड़िया का धर्मशास्त्र, मोदी का समाजशास्त्र आदि, तभी कामयाबी मिलेगी। उसे तमाम जनरल नालेज की चीजें और व्यावहारिक जानकारियां भी होनी चाहिए। क्या उसने त्रिशूल दीक्षा ग्रहण की? क्या उसने बजरंग दल की ट्रेनिंग ली?, क्या उसे हिन्दू होने का गर्वबोध है?" मैंने कहा नहीं। उनकी भौंहे तन गयी, बोले-"तब फिर बताओ कैसा होगा वह नौजवान? अरे यह सब सशक्त, जुझारू, और दूरदर्शी व्यक्तित्व की आवश्यक शर्तें हैं।" वैसे तुम्हें ज्यादा चिन्ता नहीं करनी चाहिए क्योंकि इन बच्चों के मामा कुबेरानन्दजी महाराज बिलगेट्स जी आये थे। हमने तुम्हारे लिए पूरी याचना की है। उनकी सेवा में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ा है।

"श्रीमान, मेरे पड़ोस में एक नौजवान रहता है। वह मेरे लड़के से कह रहा था कि संसद की एक घंटे की कार्यवाही पर 16 लाख रुपये, प्रधानमंत्री कार्यालय पर रोज दो लाख अड़तीस हजार रुपये, राष्ट्रपति भवन पर रोज चार लाख चौदह हजार रुपये तथा अन्य वी.आई.पी. लोगों की सुरक्षा में करोड़ों रुपये खर्च होते हैं। वहीं दूसरी तरफ आर्थिक तंगी से लोग परिवार समेत आत्महत्यायें कर रहे हैं।"---(अपने चिरपरिचित अन्दाज में हाथ मलते हुए बीच में ही टोककर) "यह तो जनतंत्र है भाई, इसमें मैं क्या कर सकता हूं, हें हें हें---।" लेकिन श्रीमान वह तो कह रहा था कि यह जनता के साथ धोखा है। आडवाणी जी के चेहरे पर कुटिल मुस्कान खेल गई, हाथों को मलते हुए बोले- "वह जरूर कोई आतंकवादी है। चिन्ता की कोई बात नहीं, उसे पोटा के तहत गिरफ्तार कर लिया जायेगा।

'पोटा' के नाम से मेरे गले से भयानक चीख निकल गयी। चीख सुनकर मेरी झुग्गी के पड़ोसी भागे-भागे आये। मैंने उन्हें भी यही सपना जुबानी बता दिया था, जो आपको लिखकर बता रहा हूं।

तुम्हारे सदाचार की क्षय

(पेज 8 से आगे)

कर दी। लेकिन पत्र को पाकर जिस फिक्र में मैं महीनों रहा उससे मुझे यह तो मालूम हो गया कि हम लोग कितने पानी में है। मुझे आश्चर्य होता है कि हमारे पूर्वजों ने स्वच्छता के लिए अत्यन्त आवश्यक इन चीजों की ओर क्यों ध्यान दिया? बल्कि जो ध्यान दिया भी है तो उल्टा, जिससे स्वच्छता में और बाधा पड़ती है। पाखाना उठाने वाले को हमारे देश में सबसे नीच समझा जाता है। अभी तो उन जातियों को हमने आर्थिक चक्की से पीस रखा है और पेट के आगे उन्हें इज्जत-आत्म सम्मान खयाल ही नहीं। लेकिन किसी-न किसी दिन यह अवेगा जरूर। फिर समाज की इस सबसे बड़ी सेवा के लिए सबसे जबर्दस्त लांछना को सहने के लिए वे कैसे तैयार होंगे? और, यदि उन्होंने पाखाना साफ करना छोड़ दिया तो चन्द ही दिनों क्या हमारे महल सूने नहीं हो जाएंगे? इंलैण्ड में चले जाइये, वहां जो व्यक्ति रसोई बनाता है, वह पाखाने में झाड़ू दे देता है। जापान में देखिए, वहां तो पाखाना बेचने वाले कितने सम्भ्रांत व्यापारी हैं। किसी को पाखाना उठाने में घृणा नहीं है। हमारी दुनिया ही न्यारी है।

यह एक उपयोगी नयी चीज को ग्रहण करने में हम अपनी संस्कृति और सभ्यता की दुहाई देने लगते हैं। हैट, कोट, पतलून को देखकर हमारे कितने ही लोग नाक- भौं सिकोड़ते हैं। वित्त से अधिक खर्च करने का जहां तक सवाल है वहां तक हम कुछ नहीं कहते, किन्तु ढीली-ढाली धोती या लम्बे-चौड़े सास्कार क्या काम करने वाले आदमी के लिए उपयुक्त हो सकते हैं? अधबहियाँ कुर्ता, जाँघिया और सोला हैट (मोटा टोप) काम करने के लिए सबसे उपयुक्त पोशाक है। धूप से बचने के लिए सोला हैट बड़े काम की चीज है। इन चीजों को पश्चिम यूरोपीय या क्रिस्तानी कह कर हम दुतकारते हैं। लेकिन क्या मालूम नहीं कि न ये पश्चिमी है, न यूरोपीय है और न क्रिस्तानी। दो सौ बरस पहले अंग्रजों के पूर्वज झोंटा रखते थे। उनकी पोशाक भी ऊल-जलूल थी। आधुनिक पोशाक पिछले दो बरसों से चिन्तन और परिवर्तन का परिणाम है। अभी महा युद्ध के आरम्भ तक यूरोप की स्त्रियां बड़े-बड़े बाल रखती थीं। उनकी पोशाक में आज से कई गुना ज्यादा कपड़ा लगता था। आज यूरोप की स्त्रियों ने बाल काट लिए है, उनकी पोशाक हल्की हो गई है। कमर पतली करने की वह पुरानी सनक अब उनमें नही रही। स्त्री-पुरुष का ब्याह किस लिए होता है? सन्तान ही उनमें मुख्य बात नहीं है। अव्वल तो हमारे यहाँ विवाह का भार जबर्दस्ती मां-बाप अपने ऊपर लेना चाहते है। सन्तान इसमें दस्तन्दाजी न करे, इसलिए बचपन में ही विवाह कर देना चाहते हैं। यह भी हमारी संस्कृति का एक बहुत 'उज्ज्वल' अंग कि जिन्हें सारी जिन्दगी एक-दूसरे के साथ बितानी है, उन्हे एक-दूसरे की प्रकृति और दिलचस्पी से परिचय प्राप्त करने का मौका बिना दिये हमेशा के लिए गले में बांध दिया जाये। इस तरह की स्वेच्छाचारिता ने लाखो पारिवारिक जीवनों को नरक के रूप में परिणत कर दिया है, तो भी कोई इससे शिक्षा लेने को तैयार नहीं है। माता-पिता विवाह कर देते हैं, लेकिन विवाहित जोड़े के लिए समाज की सख्त हिदायत है कि कम-से-कम जवानी भर वे एक-दूसरे से खुले तौर न मिलें। दुनिया के सभी भागों में विवाहित स्त्री-पुरुष की अलग चारपाई नहीं होती। वहाँ चारपाई अलग होने का मतलब है कि तलाक की तैयारी। लकिन हमारे यहां तो चारपाई अलग ही नहीं, सोने की जगह भी अलग होनी चाहिए। और शिष्टता का तक़ाजा है कि पति घर वालों की जानकारी में पत्नी के पास न जाये। विवाहित पुरुष अपनी पत्नी को अपने साथ नहीं रख सकता। चाहे बरसों नौकरी या व्यापार में दूर-दूर रहना पड़े तो भी इस तरह की स्वतन्त्रता को शिष्टाचार के विरूद्ध समझा जाता है। सारांश यह कि जिस अपने इतिहास और संस्कृति का अभिमान हम करते हैं, वह हमें साधारण मनुष्य जैसा जीवन भी बिताने देना नहीं चाहती। खान-पान, रहन-सहन, शादी-ब्याह, स्वास्थ्य-सफाई और भाईचारा-सभी में वह हमें दुनिया की नजरों में जलील बनाना चाहती है। हमारे लिए सबसे अच्छा यही है कि अपने इतिहास को फाड़कर फेंक दें और संस्कृति से अपने को वंचित समझ कर दुनिया की और जातियों से फिर क,ख पढ़ना सीखें।

नारी सभा

(1830-1930)

मदर जोंस :
मज़दूरों की बूढ़ी अम्मा और पूँजीपतियों के लिए "अमेरिका की सबसे खतरनाक औरत"

आजादी और बराबरी के लिए मजदूरों की लम्बी लड़ाई ने सैकड़ों ऐसी महिलाओं को जन्म दिया है जिन्होंने न केवल मुनाफाखोर लुटेरों के दिलों में दहशत पैदा कर दी बल्कि दुनियाभर में नये समाज के लिए लड़ने वालों के लिए एक मिसाल बन गईं। इन्हीं में से एक थीं अमेरिका की मैरी जोंस जिन्हें मजदूर प्यार और आदर से मदर जोंस कहकर पुकारते थे और पूँजीपतियों के अखबार "अमेरिका की सबसे खतरनाक औरत" कहते थे।

पहली मई, 1880 को आयरलैंड में जन्मी मैरी हैरिस 1838 में अपने परिवार के साथ अमेरिका चली आई थी। स्कूली पढ़ाई पूरी करने के बाद वह पहले दर्जिन का और फिर स्कूल टीचर का काम करने लगी। 1861 में उसने लोहा ढलाई मजदूर और यूनियन कार्यकर्ता जार्ज जोंस से शादी कर ली। लेकिन छह साल बाद ही पीले बुखार की महामारी में उसके पति और चार बच्चों की मौत हो गई।

मैरी जोंस शिकागो चली आई और कपड़े सिलने का काम करने लगी, लेकिन कुछ ही समय बाद 1871 में शिकागो में लगी भीषण आग में उसका घर जलकर राख हो गया। उसने एक चर्च के तलघर में शरण ली और सड़कों पर भटकते हुए वह मजदूर संगठन 'नाइट्स ऑफ लेबर' की बैठकों में जाने लगी। जल्दी ही वह जी-जान से मजदूर आंदोलन में लग गई और ताउम्र इसे आगे बढ़ाने में जुटी रही। मजदूरों को संगठित करने के प्रयासों में मदद करने के लिए वह देश भर में घूम-घूमकर अपने जोशीले भाषणों से उनमें उत्साह भरने लगी। यूनियन संगठनकर्ता के रूप में अपने कई दशक लम्बे जीवन के दौरान मैरी हैरिस जोंस ने कोयला खनिकों, सूत मिलों के बाल मजदूरों, रेल के डिब्बे बनाने वालों और धातु खदानों के मजदूरों को संगठित किया।

मदर जोंस ने अपनी जिन्दगी का बड़ा हिस्सा खदान मजदूरों को संगठनकर्ता के रूप में बिताया। वेस्ट वर्जीनिया और पेनसिल्वेनिया प्रांतों के कोयला मजदूरों की यूनियन बनाने का हक दिलाने की लड़ाई में उन्होंने अपने 40 वर्ष खपा दिये। एक इतिहासकार के शब्दों में, "खनिकों के संघर्षों में वह खाइयों और नाले पार करके पर्चे बाँटने जातीं, बेधड़क मशीनगनों के सामने खड़ी हो जातीं और अकसर सिपाहियों को ताना मारती थीं कि उनमें हिम्मत हो तो एक बुढ़िया को गोली मारके दिखायें।"

मदर जोंस ने मजदूर बस्तियों की औरतों को संगठित कर मजदूर हितों की लड़ाई का एक सक्रिय और अहम हिस्सा बना दिया। उनका एक सबसे असरदार हथियार था "बर्तन-भाँडा ब्रिगेड।" सन 1900 में पेनसिल्वेनिया के कोयला मजदूर जब हड़ताल पर थे तो मदर जोंस ने औरतों को संगठित करके हड़तालतोड़कों को हड़ताली मजदूरों की जगह काम पर जाने से रोक दिया। औरतें खदानों के गेट पर इकट्ठा हो गईं और अपने बर्तन पीटते और झाड़ू लहराते हुए गद्दार मजदूरों पर इतने जोर से चीखी-चिल्लाईं कि वे भाग खड़े हुए। मदर जोंस ने एक पत्र में लिखा है, "उस दिन से औरतें दिनो-रात खदानों पर चौकसी रखने लगीं, ताकि कम्पनी हड़ताल तोड़ने के लिए बाहरी मजदूरों को न ला सके। हर रोज औरतें एक हाथ में झाड़ू और पतीले लिये हुए और दूसरे हाथ में शाल में लिपटे नन्हें बच्चों को संभाले हुए खदानों पर जाने लगीं। उन्होंने किसी को भीतर नहीं जाने दिया।"

सूत मिलों और कोयला खदानों में बच्चों से जिन हालात में काम लिया जाता था, उसे देखकर मदर जोंस गुस्से से बिफर उठती थीं। बाल मजदूरों की हालत के बारे में खुद जानकारी लेने के लिए उन्होंने दक्षिण की कपड़ा मिलों में काम भी किया। कैनसिंगटन में 1903 में कपड़ा मिल मजदूरों की हड़ताल के लिए समर्थन जुटाने वहाँ गईं मदर जोंस ने उस समय के अनुभव के बारे में लिखा है, "हर दिन छोटे-छोटे बच्चे यूनियन के दफ्तर में आते थे। किसी का हाथ कुचल गया था, किसी का अंगूठा गायब था, किसी की उँगलियाँ कटी हुई थीं। वे अपनी उम्र से भी छोटे दिखते थे, दुबले-पतले और सिकुड़े हुए-से। उनमें से बहुतों की उम्र 10 साल भी नहीं थी, हालाँकि प्रांतीय कानून में 12 साल से कम के बच्चों से काम लेने की मनाही थी।" वह बच्चों का शोषण रोकने के लिए कानून बनाने की माँग लेकर फिलाडेल्फिया के बच्चों के एक बड़े जुलूस के साथ राष्ट्रपति थिओडोर रूजवेल्ट से मिलने भी गईं जो उस वक्त न्यूयार्क के अपने बंगले में छुट्टियाँ मना रहा था। राष्ट्रपति ने उन लोगों से मिलने से भी मना कर दिया लेकिन जनता के दबाव में पेनसिल्वेनिया की विधानसभा को बाल मजदूरी कानून में सुधार करना पड़ा।

मदर जोंस 100 साल तक जिंदा रहीं और आखिरी साँस तक वह अमेरिका के मजदूरों की दशा बेहतर बनाने के संघर्ष से किसी न किसी तरह जुड़ी रहीं।

लम्बी लड़ाई के बाद अमेरिका के मजदूर वर्ग ने बहुत से अधिकार हासिल किये और नर्क के गुलामों जैसी जिंदगी से मुक्ति पाई। अमेरिकी पूँजीपतियों ने दुनिया भर की मेहनतकश जनता को लूटकर अपने यहाँ मजदूरों के एक हिस्से को खूब सुविधाएँ भी दीं। इन्हीं सुविधाप्राप्त मजदूरों के बीच से निकले खाये-पिये-अघाये मंजदूर कुलीनों ने अल्बर्ट पार्सन्स और मदर जोंस जैसे हीरों से जगमगाते अमेरिकी मजदूर आंदोलन के शानदार इतिहास को कलंकित कर दिया है। लेकिन हिन्दुस्तान सहित तीसरी दुनिया के तमाम देशों में आज भी करोड़ों मजदूर वैसी ही नारकीय जिंदगी जी रहे हैं जिसके खिलाफ सौ साल पहले मदर जोंस लड़ रही थीं। उनके लिए मदर जोंस की जिंदगी प्रेरणा की मिसाल बनी रहेगी। मदर जोंस ने बाल मजदूरों की स्थिति का जायजा लेने के लिए मिल में मजदूरी करते हुए जो रिपोर्ट लिखी थी, वह हम यहाँ 'बिगुल' के पाठकों के लिए प्रकाशित कर रहे हैं।

–सम्पादक

अमेरिका की सूत मिलों में जिंदगी की एक झलक

• मदर जोंस

अलाबामा प्रांत में बर्मिंघम की खदानों में और रेल पटरियों पर काम करने वाले मजदूरों ने कुछ महीने पहले एक शाम मुझे दक्षिणी अमेरिकी प्रांतों की सूत मिलों में मजदूरों की हालत के बारे में विस्तार से बताया। उन्होंने इन मजदूरों की गुलामों जैसी जिंदगी की एकदम जीती-जागती तस्वीर मेरी आंखों के सामने खड़ी कर दी। उनकी बातें सुनकर मुझे लगा कि वह जगह काला पानी से भी बढ़कर है। लेकिन मैंने सोचा कि ये लड़के बढ़ा-चढ़ाकर बातें कर रहे हैं। मैंने तय कर लिया कि मैं खुद जाकर इन हालात को देखूँगी।

मैंने वहाँ नौकरी ढूँढ़ ली और मिल तथा बस्ती में मजदूरों के साथ घुल-मिलकर रहने लगी। मैंने देखा कि सुबह साढ़े चार बजे ठेकेदार की सीटी बजते ही छह-सात साल के बच्चों को घसीटकर बिस्तर से उठा दिया जाता था। वे रेढ़ी के तेल में भिगोकर मक्के की रोटी का मामूली नाश्ता करते थे और पेट में जलन पैदा करने वाली काली काफी का एक-एक प्याला पीकर चल पड़ते थे। बड़े और छोटे गुलामों की पूरी फौज पाँच बजे तक सड़कों पर होती थी। साढ़े पाँच बजे तक वे सब कारखाने की ऊँची दीवारों के पीछे होते थे, जहाँ मशीनों की घरघराहट के बीच रोज चौदह घण्टे तक उनकी कमसिन जिंदगी मुनाफे की चक्की में पिसती रहती थी। इन असहाय इनसानों के उदास चेहरों को देखकर लगता था जैसे उनकी आत्मा चीखकर कह रही हो, "अरे ओ, पूँजीवादी लालच के फौलादी चक्को, जरा देर के लिए थम जाओ! हम एक-दूसरे की आवाजें तो सुन सकें, और यह महसूस तो कर सकें कि बस यूँही घिसते जाना ही जिन्दगी नहीं है।" दिन के बारह बजे हम थोड़ा सा खाना खाने और आधे घण्टे आराम के लिए रुके। 12.30 बजे हम फिर काम में लग गये और बिना रुके सात बजे तक खटते रहे। फिर हम पैर घसीटते हुए घर लौटे जहाँ हमने रूखा-सूखा रात का खाना खाया, कुछ देर अपनी दुर्दशा पर बातें कीं और फिर पुआल के बिस्तर पर पड़ रहे–भोर होते ही सीटी की कर्कश आवाज ने बच्चों सहित सबको जगाकर फिर से कमरतोड़ काम पर भेज दिया।

मैंने देखा है कि माँएँ नींद से ढिमलाते अपने नन्हें बच्चों को जगाने के लिए उनके मुँह पर ठण्डा पानी फेंक देती हैं। मैंने उन्हें सारा दिन खतरनाक मशीनों पर काम करते देखा है। मैंने उनके नन्हें अंगों को मशीनों में फँसकर कटते देखा है, और जब वे अपाहिज होकर अपने मालिक के किसी काम के नहीं रह जाते, तो उन्हें मरने के लिए कारखाने से धकियाकर बाहर किये जाते भी देखा है। हाँ, मगर कम्पनी को इस बात का श्रेय मुझे देना ही चाहिए कि वह हर इतवार को प्रवचन देने के लिए एक पादरी को पैसे देकर बुलाती है। उपदेशक महोदय मजदूरों को समझाते हैं कि "ईसा मसीह की प्रेरणा से श्रीमान फलां ने फैक्टरी बनाई ताकि आप लोग कुछ पैसे कमा सकें और पुण्य कमाने के लिए कुछ दान-दक्षिणा दे सकें।"

•

मैं अलाबामा के टुस्कालूसा में स्थित फैक्टरी में रात दस बजे पहुंची। सुपरिटेण्डेण्ट को मेरे मकसद के बारे में कुछ पता नहीं था इसलिए उसने मुझे भीतर घूमने दिया। एक मशीन, जिसमें 155 तकलियाँ थीं, के पास दो नन्हीं लड़कियाँ खड़ी थीं। मैंने पास खड़े एक आदमी से पूछा कि क्या ये उसकी बच्चियाँ हैं। उसने हाँ में जवाब दिया।

"कितनी उम्र है इनकी?" मैंने पूछा।

"ये 9 की है, वह 10 की," उसने जवाब दिया।

"रोज कितने घंटे काम करती हैं?" मैंने पूछा।

जवाब था, "बारह।"

"एक रात के काम का इन्हें कितना मिलता है?"

"हम तीनों को मिलाकर 60 सेंट* मिलते हैं। उन्हें 10-10 सेंट मिलते हैं और मुझे 40 सेंट।" (* 100सेंट का एक डालर होता है। उस समय का एक सेंट आज के करीब एक रुपये के बराबर होगा।–सं.)

सुबह गुलामों के उस बाड़े से बाहर जाते हुए मैंने उन्हें देखा। जाड़े की बर्फीली हवा से बचने के लिए अपने दुबले-पतले नन्हें शरीर पर चिथड़े लपेटकर वे दुबकती हुई चली जा रही थीं। आधा पेट खाकर, अधनंगे रहकर और टूटे-फूटे घरों में जीकर ये खटते रहते हैं जबकि उनके मालिकान के झबरीले कुत्ते दूध और गोश्त खाते हैं और पंखों वाले नर्म बिस्तर पर सोते हैं–और पूँजीवादी जज उन आंदोलनकारियों को जेल भेज देते हैं जो इन बदहाल मजदूरों की हालत सुधारने में उनकी मदद करने की गुस्ताखी करते हैं। दक्षिण में फैले नरक का एक हिस्सा गिब्सन कस्बा भी है। यहाँ मुख्य पेशा जिंघम (मोटा रंगीन सूती कपड़ा) की बुनाई है। यह कस्बा एक बैंकर की सम्पत्ति है जो यहाँ की मिलों और लोगों, दोनों का मालिक है। उसकी एक गुलाम ने मुझे बताया कि उसे अपनी मेहनत के लिए पूरे एक साल तक हर हफ्ते एक डालर मिलता था। हर हफ्ते मजदूरी वाले दिन उसका ठेकेदार उसे एक डालर देता था। सोमवार को वह अपना एक डालर पड़ोस की एक दुकान में जमा कर देती थी जहां उसे एक हफ्ते तक घटिया खाना मिलता रहता था। बस ऐसे ही हफ्ते-दर-हफ्ते उसकी जिंदगी चलती रहती थी।

एक समय अलाबामा के कानून में बारह साल तक के बच्चों से रोजाना 8 घंटे से ज्यादा काम लेने पर रोक थी। गैडस्टन कम्पनी अड़ गई कि जब तक यह कानून वापस नहीं लिया जायेगा तब तक वह यहाँ नई मिल नहीं लगायेगी। असेम्बली के कागजात पढ़ने से मुझे पता चला कि जब इस कानून को खत्म करने के सवाल पर बहस हुई तो सदन में साठ सदस्य मौजूद थे। इनमें से सत्तावन ने कानून खत्म करने के पक्ष में वोट दिया और सिर्फ तीन उसके खिलाफ थे।

मैं असेम्बली के एक सदस्य से पूछ कि उसने बच्चों की हत्या करने के लिए वोट क्यों दिया। उसने जवाब दिया कि उसका ख्याल था कि सिर्फ आठ घंटे काम करने से बच्चे अपने गुजारे लायक पैसे नहीं कमा पायेंगे। ऐसे हैं वे घाघ जिन्हें "सोच-समझकर" वोट डालने वाले मजदूर चुनकर भेजते हैं। जार्जिया की फीनिक्स मिल के मालिक करीब एक साल पहले मजदूरी में कटौती की सोच रहे थे। लेकिन एक कोशिश करने के बाद वे पीछे हट गये और इसके बजाय एक बचत बैंक शुरू कर दिया। छह महीने बाद बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स ने पाया कि उनके लिए दौलत पैदा करने वाले बेचारे मजदूर अपनी मजदूरी का 10 प्रतिशत बचत करते हैं। उन्होंने फौरन मजदूरी में 10 प्रतिशत कटौती कर दी जिसका नतीजा हुआ 1896 की बड़ी हड़ताल। मैं सोचकर हैरान रह जाती हूँ कि अमेरिकी जनता ऐसी स्थितियों में आखिर कब तक चुप रहेगी।

इन सूत मिलों में मेरे साथ काम करने वाला हर इनसान किसी न किसी बीमारी का शिकार था। हर किसी से उसकी ताकत की आखिरी बूँद तक निचोड़ ली जाती थी। बुनकरों से अपेक्षा की जाती है कि वे हर रोज दर्जनों गज कपड़ा तैयार करें। फैक्टरी में मशीन पर काम करने वाला अपने शरीर और दिमाग की सारी ताकत खो देता है। दिमाग इस तरह कुचल जाता है कि कुछ भी सोचना मुश्किल होता है। इन लोगों के साथ घुलने-मिलने वाला कोई भी व्यक्ति जान जायेगा कि इनके शरीर की तरह इनके मन भी टूट चुके हैं। नींद और आराम की कमी से भूख मर जाती है, अपच रहता है, शरीर सिकुड़ जाता है, कमर झुक जाती है और सीने में हर वक्त जलन रहती है।

ऐसा फैक्टरी सिस्टम लोगों को तड़पा-तड़पाकर मारने का इंतजाम है। यह लम्बे समय तक धीरे-धीरे चलने वाले कत्लेआम की तरह भयानक है और किसी भी कौम या किसी भी युग के ऊपर एक कलंक है। इस तस्वीर को आँखों के सामने उभरता देखती हूँ तो मैं उस राष्ट्र के भविष्य के बारे में सोच कर काँप उठती हूँ जो सर्वहारा वर्ग के बच्चों के खून से धनिकों और कुलीनों का तंत्र खड़ा कर रहा है। ऐसा लगता है जैसे हमारा राष्ट्रीय झंडा खून के धब्बों से भरा कोई कफन हो। पूरी तस्वीर भयानक और घिनौने लालच, स्वार्थ और क्रूरता से भरी है। आज यह घृणा पैदा करती है और कल यह पतन का कारण बनेगी। आधा पेट खाकर ताकत से दूना काम करने वाली माँएँ थके और जर्जर शरीर वाले नये इनसानों को जन्म देती हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था को सिरे से उखाड़कर फेंक दिया जाये, इसके सिवा और कोई रास्ता मुझे दिखाई नहीं देता। जो बाप इस व्यवस्था को बनाये रखने के लिए वोट देता है, वह मेरी नजर में वैसा ही हत्यारा है मानो उसने पिस्तौल लेकर अपने बच्चों को गोली मार दी हो। लेकिन मुझे अपने चारों ओर समाजवाद की नई सुबह फूटने की निशानियाँ दिखाई दे रही हैं, और हर जगह अपने मरोसेमंद साथियों के साथ मैं उस बेहतर दिन को लाने के लिए काम करूँगी और कामना करूँगी कि वह जल्दी आये। •

प्रस्तुति : सत्यम

"ऐसा लगता था कि जहाँ भी बदहाल मजदूर हड़ताल पर जाते, जहाँ भी शोषित बाल मजदूर मदद की गुहार लगाते, सफेद बालों के ऊपर काली टोपी लगाये हुए यह शिकायती औरत उनका नेतृत्व करने के लिए मौजूद रहती थी। वह ऊंची आवाज में बोलती थी और उसकी नजरें सामने वाले को मानो भेद डालती थीं।"

–मदर जोंस के बारे में एक अमेरिकी लेखक

"चाहे जैसी भी लड़ाई हो, लेडीज (संभ्रांत भली महिलाओं) जैसी मत बनो! ईश्वर ने औरत को बनाया और रॉकफेलर (अमेरिका का उस समय का सबसे बड़ा पूँजीपति) के चोरों के इस गिरोह ने बनाई लेडीज।" –मदर जोंस

पद

• मनबहकी लाल

मनुआ, तुम कत रहत हरे।
अस अमूर्त दरसन सुनि-सुनि कै ठाढ़े क्यूँ न जरे।
सभागार में बिद्वानन के रेवड़ ठूँस भरे।
जूठन को मौलिक कहि-कहि कै, पगुरी खूब करे।
चिन्तन से उत्तर-चिन्तन में अस संक्रमण करें।
अस बिमर्श का चर्खा कातैं, भ्रम का धुंआ भरें।
जो कुछ हुआ नकारें उसको, नव-सिद्धांत गढ़ें।
रस्सी फेंके आसमान में, उस पर जाइ चढ़ें।
ठलुआ चिन्तन का सिक्का मण्डी में खूब चले।
मूड़ मुड़ाये पढ़ुआ गन बिच इनकी दाल गले।
मीन मेख अस काढ़ैं जस निखुराहा बरध चरे।
अस कसिकै पछींट कै धोवैं, कुकुरा घाट मरे।

पीने के पानी पर मुनाफाखोरों की गिद्धदृष्टि

हवा अभी नहीं बिकी है। पानी बेचा जा चुका है पूरे देश में पानी के निजीकरण की तैयारियां चल रही हैं। छत्तीसगढ़ की शिवनाथ नदी को बेचने के बाद अब पूरे देश में पानी के निजीकरण की तैयारियां चल रही हैं। बोतलबंद पानी से हर साल अरबों रूपये कमाने वाले देश-विदेशी मुनाफाखोर आक्टोपस की तरह अपने पाँव पसार रहे हैं। देश के लगभग तेईस शहरों में पानी के प्रबन्धन में थैलीशाहों नें अपनी घुसपैठ बना ली है। विवंडी, थामस वाटर, बैक्टेल, स्वज, डिग्रामोंट जैसे विशालकाय बहुराष्ट्रीय निगम हमारे पानी पर गिद्ध दृष्टि लगाये हुए है।

दुनिया के लुटेरों का पानी के कारोबार में अकूत मुनाफा दिखाई पड़ रहा है। अभी यह स्थिति है कि दवा उद्योग से ज्यादा मुनाफा इसमे मिल रहा है। अभी केवल पाँच प्रतिशत क्षेत्र पर कब्जा जमाये धनकुबेर दुनिया भर में सालाना लगभग एक खरब डालर का मुनाफा पीट रहे है। मौंसेटों जैसे दैत्याकार निगम की पानी पर कब्जे की हवस का आलम यह है कि उसने योजना बनाई है कि सन्2008 तक सिर्फ भारत और मैक्सिको में पानी बेचकर वह चालीस करोड़ डालर का कारोबार करेगी

अंग्रेजी राज से आजादी के छप्पन साल बाद भी जिस देश की सरकारी आम आबादी को पीने योग्य साफ जल उपलब्ध करा न पाई हो, वह सरकार अचानक जल संरक्षण और नदियों को जोड़ने की चीख-पुकार करने लगे तो समझा जा सकता है कि सरकार अपनी जनता के खिलाफ कोई बड़ा षड्यंत्र रच रही है। इसकी असली नीयत का तो तभी पता चल जाता है, जब यह जल नीति के पैरा न. 13 पर मौन साध लेती है, जिसमें पानी पर निजी स्वामित्व सुनिश्चित किया गया है। जाहिर है सरकार देशी-विदेशी धनपशुओं को आमंत्रित करने के लिए योजनाएं बना रही है, जिसे आने वाले दिनों में इस रूप में प्रस्तुत किया जायेगा कि आम जनता के पानी उपलब्ध कराने के लिए इस क्षेत्र में विनिवेश जरूरी है। विनिवेश-आम जनता के लिए इस दौर के सबसे कमीने मजाक का प्रतीक बन चुका यह शब्द-बूँ-बूँ में तैराया जायेगा। विनिवेश मंत्री दाँत चियारता हुआ इसके महत्व के बारे में बतायेगा, जैसे दुनिया का पानी कुछ हरामजादों की बपौती हो।

इसी वर्ष मार्च में जापान में तीसरे विश्व जल मंच की बैठक में यह अनुमान लगाया गया था कि स्वच्छ पेय जल उपलब्ध कराने के लिए सालाना 180 अरब डॉलर खर्च किये जाने की जरूरत है। सवाल यह है कि पैसा कौन लगायेगा? अमेरिका इराक में जनसंहार करने के लिए 75 अरब डालर फूँक सकता है, उसके लिए तो यह निवेश है, लाखों इंसानों की जान लेकर तेल पर कब्जा कर खरबों डालर कमाना अमेरिका और अन्य साम्राज्यवादियों की चांडाल चौकड़ी के सामने आज तीसरी दुनिया के देशों के हुक्मरान अपनी नाक रगड़ रहे हैं। और तीसरी दुनिया में ही पेय जल का संकट सबसे ज्यादा है। भारत जैसे बड़े देश में सरकारें इतनी जनविमुख हो चुकी है कि वह आम जनता के बुनियादी अधिकारों को लात मार चुकी हैं। जनविरोधी नीतियों के किसी सशक्त, संगठित प्रतिरोध के अभाव में सरकारें खुल्लमखुल्ला पूँजीपतियों के पक्ष में खड़े होकर मेहनतकश जनता के खिलाफ एकतरफा युद्ध छेड़े हुए हैं।

विरोध के वे स्वर, जिन पर जनता का थोड़ा बहुत विश्वास बचा था, अब सत्ता के गलियारों में झींगुर-गान से ज्यादा कुछ नहीं रहे। देशी-विदेशी पूँजी की चाकरी में यदि भाजपा आज 'नम्बर वन' है तो इस दौड़ में कांग्रेस से लेकर नकली कम्युनिस्ट पार्टियों तक सभी चुनावबाज पार्टियां अपने नीचे तक का जोर लगाकर मैदान में डटी है बुर्जुआ मीडिया से क्या उम्मीद करें वह तो शासक वर्गों की चरण वंदना में चारणभाटों को भी मात दे रहा है। 'महान भारतीय संस्कृति' और 'स्वदेशी' के ठेकेदार धर्म के नाम पर 'जिसका खून नहीं खौला, खून नहीं वह पानी है' का नारा देते है, लेकिन जब देश के हवा-पानी पर भी देशी-विदेशी लुटेरे कब्जा जमा रहे हों तो इनका खून ठंडा पड़ जाता है। क्या यह सच नहीं है कि मेहनतकश जनता के संगठित विरोध की जड़ों पर मट्ठा डालने के लिए जनता के असली मुद्दों से ध्यान भटकाने के लिए ये सुनियोजित तरीके से कभी मन्दिर-मस्जिद मुद्दा उछालते हैं, कभी गुजरात में कत्लेआम कर उसे राष्ट्र का गौरव बताते हैं तो कभी स्वदेशी-स्वदेशी चिल्लाकर विरोध का स्वांग रचते हैं? क्या यह सच नहीं कि जब से निजीकरण- उदारीकरण की देशद्रोही नीतियां लागू हुई हैं तभी से इनकी "राष्ट्रभक्ति" उछालें मारने लगी है?

यह सच है कि आज चाहे पानी का मामला हो या कोई और, इस देश के मजूर-किसान, छात्र-नौजवान एकजुट होकर, एक झंडे तले जनविरोधी सरकारों की चार सौ बीसी को बेपर्दा नहीं कर पा रहे हैं। लेकिन यही अन्तिम सच नहीं हैं यह धरती कभी भी वीरों से पूरी तरह न खाली हुई है, न होगी। दुश्मन आज बहुरूपिया है,भेष बदलकर वह वार कर रहा है। रण कठिन है इसीलिए इतिहास मेहनतकश वर्ग के बहादुर बेटे बेटियों को प्रण कर इस रण में उतरने के लिए आमंत्रित कर रहा है। यह आमंत्रण आने वाले दिनों निश्चित तौर पर अपना रंग दिखायेगा बहादुर नौजवानों की जवानी का रंग एक छोटे से देश बोलीविया के हुक्मरानों ने तब देखा, जब वहाँ पर सरकार ने पेय जल की आपूर्ति और प्रबन्धन का निजीकरण कर दिया। नौजवान सड़कों पर उतर आये और उन्होंने बोलीविया के शासकों की नींद हराम कर दी। अर्जेण्टीना, पनामा, इक्वेडोर में भी कुछ इसी तरह की घटनाएं पिछले वर्षों में घटी है। भारत के मेहनतकश वर्गों को भी ऐसी तैयारियों में जुट जाना होगा कि न सिर्फ हुक्मरानों की नींद हराम हो बल्कि मुनाफे पर टिकी वह व्यवस्था, जो हमें अपने पानी तक से वंचित करे दें, को उखाड़कर हिंद महासागर में फेंक दिया जाये।

एक और सुरक्षाकर्मी की खुदकुशी से उठे कई सवाल

फ़र्ज़ के नाम पर ढोर-डाँगर वाले अनुशासन के खिलाफ अंधी बगावत?

दिल्ली (बिगुल संवाददाता)। सी.जी.ओ. काम्प्लेक्स में ड्यूटी पर तैनात केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल (सीआईएसएफ) के एक 27 वर्षीय जवान लोकेश विश्वास ने खुद को गोली मारकर मौत को गले लगा लिया। कहते हैं कि लोकेश मानसिक तनाव के दौर से गुजर रहा था। औद्योगिक सुरक्षाबल की नौकरी में वह बेहद घुटन का अनुभव कर रहा था।

अभी पिछले महीने महज 15 दिन के भीतर अलग-अलग चार घटनाएं प्रकाश में आयी थीं। जिसमें जवानों की निराशा की अभिव्यक्ति सामने आयी थी। जम्मू-कश्मीर पुलिस के एक जवान शब्बीर अहमद ने बार-बार अनुरोध के बावजूद छुट्टी न मिलने से क्षुब्ध होकर आत्म-हत्या का प्रयास किया था। जबकि श्रीनगर में ही 'केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल' (सीआरपीएफ) के एक जवान कप्तान सिंह ने अपने दो वरिष्ठों-एक कम्पनी हवलदार व एक हवलदार मेज़र की गोली मारकर हत्या कर दी। इससे पूर्व मुंबई पुलिस के सहायक पुलिस इंस्पेक्टर प्रशांत सावंत ने अपनी पत्नी और नौ साल के बेटे की हत्या करने के बाद आत्महत्या कर ली। चौथी घटना सीआईएसएफ के ही एक जवान नामदेव की है जिसने मुंबई के सहारा हवाई अड्डे पर अपने डिप्टी कमाण्डेंट ए.आर.करंजकर को गोली से उड़ा दिया और अपने सहकर्मियों को घण्टों बंधक बनाये रखा। नामदेव एक अति संवेदनशील, प्रतिभाशाली युवक था-और पिता की बीमारी के बावजूद छुट्टी न मिलने से बेहद तनाव में जी रहा था।

गौर से देखा जाये तो इन अलग-अलग घटनाओं में कमोबेश एक ही प्रकार के कारण नज़र आते हैं और इनका एक सिलसिला बनता जा रहा है। कुछ दिनों पूर्व चण्डीगढ़ के एक पुलिस कांस्टेबुल ने अपने बेटे और पत्नी को गोली मारकर स्वयं खुदकुशी कर ली थी। अयोध्या में तैनात पीएसी जवानों ने अपने एक साथी की वाच टावर से गिरकर मौत पर जबर्दस्त हंगामा मचाया था और आक्रोशित जवानों ने अपने डिप्टी कमांडेण्ट की पिटाई कर दी थी। दिल्ली रेलवे स्टेशन पर सीआईएसएफ जवान ने अपने डिप्टी कमांडेण्ट व सब इंस्पेक्टर की गोली मारकर हत्या कर दी थी। सीमा पर तैनात जवानों द्वारा अपने अधिकारियों की हत्या की घटनाएं भी सामने आ चुकी है।

सवाल यह उठता है कि सेना/ सुरक्षा के जवानों द्वारा खुद को, परिवार को अथवा अपने अधिकारियों को खत्म करने की घटनाएं लगातार बढ़ती क्यों जा रही हैं?

दरअसल, सुरक्षा व सेना में काम करने वाले जवान बेहद मानसिक तनाव की जिन्दगी बिताते हैं। यहां का पूरा माहौल ही बन्द व घुटनभरा है। अंग्रेजों के शासनकाल में ही बने नियम-कायदे-कानून आज भी यहां कायम हैं। जी-हुजूरी की संस्कृति व अपने बॉस की हर जायज नाजायज फ़रमान का पालन करना यहां एक परम्परा बन चुकी है। वे समाज से और उत्पादन की कार्रवाइयों से एकदम कटे जीवन की तमाम स्वाभाविक जरूरतों तक से वंचित रहते हैं।

स्थिति यह है कि घर-परिवार की आफत-विपदा से दूर, खतरों से खेलते, तन्हाई को झेलते, अपने नौजवानी के एक-एक पल को घिसते ये जवान जरूरी छुट्टियों तक के मोहताज रहते हैं। इसके साथ ही भोगविलास में आकण्ठ डूबे निरंकुश-स्वेच्छाधारी अपने अधिकारियों द्वारा इन्हें आये दिन की प्रताड़ना सहनी पड़ती है। वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट

(शेष पृष्ठ 4 पर)

पंजीयन संख्या - 71980/99, डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2003

पुलिसिया हमले से मज़दूरों की आवाज को कुचला नहीं जा सकता

(पृष्ठ 1 का शेष)

दरअसल, इस पूरे मामले के पीछे शाही एक्सपोर्ट इण्डस्ट्रीज के मालिकान ही थे। थानाध्यक्ष के मुताबिक शाही एक्सपोर्ट इं. के मालिकान ने पुलिस क्षेत्राधिकारी से कहा था कि 'बिगुल वालों को सबक सिखा दें।' कम्पनी में मजदूरों की बुरी दशा और मजदूरों के आंदोलन के बारे में 'बिगुल' के कई अंकों में विस्तृत रिपोर्ट छप चुकी हैं। अखबार के जून '03 अंक में भी **'शाही एक्सपोर्ट समूह के मजदूरों के भीतर सुलगता आक्रोश किसी समय फूट सकता है'** शीर्षक से पूरे पृष्ठ की एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। इस रिपोर्ट से मालिकान खास तौर पर बौखलाए हुए थे।

गत 15 जुलाई की शाम को जब 'बिगुल' के साथी सेक्टर-11 स्थित शाही एक्सपोर्ट इं. की फैक्टरी के पास अखबार बेचने पहुँचे तो मैनेजमेण्ट के लोग फौरन हरकत में आ गये। जाहिर है, अखबार का यह अंक तब तक उनके पास पहुँच चुका था। पहले तो सिक्योरिटी के लोगों ने 'बिगुल' की टीम को वहाँ से चले जाने के लिए धमकाया। लेकिन शिफ्ट से छूटे मजदूरों से बतियाने और उन्हें अखबार देने का काम जारी रहा। तब तक मैनेजमेण्ट की बुलाई पुलिस वहाँ पहुँची और गालियाँ देते हुए धक्काजोरी शुरू कर दी। बात बढ़ते देख उस समय 'बिगुल' की टीम वहाँ से हट गई। अगले दिन नन्हेलाल, जयप्रकाश और गौतम की टोली न्यू कॉलोनी होकर खोड़ा कालोनी जाने वाले रास्ते पर सेक्टर-11 की मार्केट के पास खड़ी थी। शाही एक्सपोर्ट तथा नोएडा के अनेक कारखानों के मजदूर इसी रास्ते से होकर घरों की ओर लौटते हैं। उन्होंने 'बिगुल' के नारे लिखे हुए पोस्टर गले में लटकाये और अखबार की प्रतियाँ हाथों में निकाली ही थीं कि पुलिस उन पर टूट पड़ी।

'बिगुल' के पाठकों को याद होगा कि शाही एक्स. इं. वही कम्पनी है जिसके जालिम मालिकान ने वर्ष 2001 में फैक्टरी गेट पर धरना दे रहे मजदूरों के ऊपर कैंटर ट्रक दौड़ा दिया था जिससे 25 मजदूर घायल हो गये थे और एक जुझारू युवा मजदूर उपेन्द्र की मौत हो गई थी। इसके मालिकान मजदूरों को डराने-धमकाने के लिए बाकायदा गुण्डे पालते हैं जिनका इस्तेमाल 'बिगुल' के साथियों को धमकाने के लिए भी किया जा रहा है। तीनों साथियों की रिहाई तथा पुलिस की फजीहत से बौखलाए मालिकान अब गुण्डों का सहारा ले रहे हैं। 'बिगुल' के साथियों को परोक्ष धमकियाँ भिजवाई जा रही हैं। विश्वस्त सूत्रों के मुताबिक पुलिस में अपने गुर्गों के जरिए हमारे साथियों को फर्जी मामलों में फँसाने की तिकड़में रची जा रही हैं।

पिछले कुछ वर्षों के दौरान नोएडा के विभिन्न कारखानों में मजदूरों के शोषण और उनकी नारकीय जीवन स्थितियों पर 'बिगुल' की पैनी रिपोर्टें तथा आंदोलनपरक लेखों से नोएडा के कई उद्योगपति खासे परेशान हैं। 'बिगुल' से जुड़े 'बिगुल मजदूर दस्ता' के साथी नोएडा के विभिन्न कारखानों में चलने वाले संघर्षों-आंदोलनों में भागीदारी करने के अलावा नोएडा की मजदूर आबादी के बीच लगातार अभियान चलाते रहे हैं और तमाम मुद्दों पर पर्चे आदि बाँटते रहे हैं। नोएडा में कोई संगठित और जुझारू मजदूर आंदोलन नहीं होने से यहाँ के पूँजीपति बेफिक्र होकर लूट-खसोट जारी रखे हुए हैं। ऐसे में मजदूरों के बीच राजनीतिक चेतना और संघर्ष की दिशा ले जाने की किसी भी कोशिश को वे अपने लिए बेहद खतरनाक मानते हैं। आश्चर्य नहीं कि 'बिगुल' का मुँह बंद करने की साजिशों में कई उद्योगपति शामिल हों। पुलिस और जिला प्रशासन एक तरह से यहाँ के पूँजीपतियों की जेब में ही है। पूँजीपति लुटेरे मुनाफे के लिए आपस में चाहे जितनी भी होड़ करें, मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी राजनीति के प्रसार को रोकने के लिए वे फौरन एक हो जाते हैं। उत्तरांचल के तराई क्षेत्र में 'बिगुल' के साथियों के अनुभवों से हम इस प्रवृत्ति से वाकिफ हैं। वहाँ के उद्योगपति बाकायदा बैठकें करके ऐसे बयान जारी करते रहे हैं कि तराई के मजदूरों में क्रान्तिकारी विचारों के प्रसार पर रोक लगायी जाये।

इस मामले को मजदूरों पर बढ़ते हमलों से अलग करके एक मामूली घटना या महज किसी एक संगठन के साथ हुई घटना के रूप में देखना गलत होगा। यह घटना आने वाले दिनों का एक संकेत है। मजदूर आंदोलन के शक्तिहीन हो जाने से और भूमंडलीकरण के दौर में चौतरफा निर्मित मजदूर विरोधी माहौल में पूँजीपति पूरी तरह बेलगाम हो चुके हैं। पुलिस और प्रशासन ही नहीं न्यायपालिका तक आज खुलेआम उद्योगपतियों के साथ खड़ी है। मजदूर बनाम उद्योगपति के मुकदमों में आये दिन न्यायाधीश जिस तरह की भाषा बोल रहे हैं वह मजदूरों और गरीबों से रग-रग से नफरत करने वाले किसी व्यक्ति की ही भाषा हो सकती है। नोएडा जैसे औद्योगिक इलाकों में तो मजदूर इस नंगी लूट के सामने लगभग असहाय से बना दिये गये हैं। ज्यादातर कारखानों में यूनियनें नहीं हैं, जहाँ हैं उनमें से ज्यादातर पर चुनावबाज पार्टियों से जुड़े दलाल नेताओं का कब्जा है। परमानेंट मजदूरों की नौकरियों और अधिकारों पर भी मालिक जब चाहे डाका डाल देते हैं। ठेका और दिहाड़ी मजदूर, जिनकी तादाद नोएडा के कुल मजदूरों की करीब दो तिहाई पहुँच रही है, उनकी हालत तो गुलामों से भी बदतर बना दी गई है। 1200 से 1800 रुपए महीने की मजदूरी पर 12-12, 16-16 घंटे खटने के बाद वे नर्क से भी बुरे रिहायशी इलाकों में लौटते हैं। बात-बात पर गालियाँ और मारपीट रोज की बात है। दुर्घटनाओं में हाथ-पैर से लेकर जान तक चली जाने की घटनाएँ रोज ही होती रहती हैं।

मजदूर भीतर ही भीतर खौल रहे हैं। छिटपुट संघर्ष, छोटी-छोटी बगावतें फूटती ही रहती हैं, पर किसी संगठन या दिशा के अभाव में कुचल दी जाती हैं। लेकिन ऐसा हमेशा ही चलता नहीं रह सकता। इस बात को मालिकान भी बखूबी समझते हैं और इसीलिए अपने लिए खतरा बनने वाली हर आवाज को फौरन दबा देना चाहते हैं।

अभिव्यक्ति की आजादी पर इस पुलिसिया हमले का व्यापक विरोध शुरू हो गया है। देशभर से प्रगतिशील, जनवादी, वामपंथी धारा से जुड़े लोगों, मजदूर संगठनों, नागरिक एवं जनतांत्रिक अधिकार संगठनों और क्रान्तिकारी जन संगठनों ने एकजुट आवाज बुलंद की है। चारों ओर से उठने वाली आवाजों और जनदबाव के कारण हो सकता है कि प्रशासन लीपा-पोती करने के लिए कुछ कदम उठाये, लेकिन इससे हमें कतई निश्चिंत होने की जरूरत नहीं है। मजदूरों की आवाज को कुचल डालने की कोशिशों का मुकाबला मजदूरों के बीच सक्रिय शक्तियों को अपनी एकजुटता के बूते पर ही देना होगा। आपस में विभिन्न मतभेदों के बावजूद पूँजीपतियों, प्रशासन और सत्ता के हाथों दमन-उत्पीड़न के किसी भी मामले में हमें अपनी मजबूत और व्यावहारिक एकजुटता का प्रदर्शन करना होगा।

'बिगुल' के पाठकों-हमसफरों, शुभचिंतकों से अपील

साथियो,

'बिगुल' के तीन साथियों की नोएडा पुलिस द्वारा एक उद्योगपति के इशारे पर गिरफ्तारी और पिटाई एक मामूली घटना नहीं, बल्कि भविष्य में ऐसी शक्तियों पर होने वाले हमलों का एक संकेत है। इसका जबर्दस्त और व्यापक विरोध अगर दर्ज नहीं कराया गया तो इस तरह के हमले बढ़ते ही जायेंगे।

आप क्या कर सकते हैं :

- घटना की निंदा और दोषी पुलिसकर्मियों के विरुद्ध कार्रवाई की मांग करते हुए पत्र/फैक्स/फोन से नोएडा के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक से विरोध दर्ज करायें।
- अपने-अपने स्थान पर हस्ताक्षर अभियान चलाकर एस.एस.पी. व जिलाधिकारी को ज्ञापन भेजें। इसकी प्रतिलिपि आई.जी., मेरठ जोन तथा मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश को भी भेजें।
- उपरोक्त अधिकारियों को विरोधस्वरूप पोस्टकार्ड लिखें/ई मेल भेजें।
- अपने स्थान पर बैठक कर निंदा प्रस्ताव पारित करें।
- अपने संगठन/संस्था की ओर से विरोध पत्र भेजें तथा प्रेस में बयान जारी करें। उपरोक्त कार्रवाइयों की सूचना तथा विरोध पत्रों की एक प्रति हमें भी इस पते पर भेजें– 'बिगुल' C/O सत्यम वर्मा Flat No: 29, यू.एन.आई. अपार्टमेन्ट, जी.एच.-2, सेक्टर-11, वसुंधरा, गाजियाबाद,(उ.प्र.)।

संबंधित अधिकारियों के पते/फोन नंबर आदि इस प्रकार हैं:

- वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, नोएडा

वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक कार्यालय, सेक्टर-27, नोएडा- 201301
फोन नं. 0120-2350241 फैक्स - 2549330

- जिलाधिकारी, नोएडा

जिलाधिकारी कार्यालय, सेक्टर-27, नोएडा-201301

- पुलिस महानिरीक्षक, मेरठ जोन

फोन - 0122-2763664 (कार्यालय) 2763733 (आवास)

- पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश, डालीबाग, लखनऊ-226001

फोन - 0522-2206104 (कार्यालय)

- मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

मुख्यमंत्री कार्यालय , पंचम तल, सचिवालय एनेक्सी, लखनऊ-226010
फोन-0522-2230005-6 फैक्स - 2230002

धनपशुओं का स्वर्ग, मेहनतकशों का नरक

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा। स्वर्ग और नर्क का एक साथ तजुर्बा करना हो तो राजधानी दिल्ली से सटी औद्योगिक नगरी नोएडा चले आइये। चौड़ी--चमचमाती मुख्य सड़कों के दोनों ओर ढिठाई के साथ खड़ी आलीशान इमारतों की अन्तहीन कतारें से गुजरते हुए आपको इसका अहसास तक न होगा कि इसी नोएडा में एक दुनिया ऐसी भी है जहां रहने वालों की जिन्दगी रसातल के अंधेरों में डूबी हुई है। आये दिन नोएडा और ग्रेटर नोएडा प्रशासन विकास की नयी-नयी घोषणाएं करता रहता है पर ये सब सेक्टरों के विकास के लिए होती हैं। जिन गांवों को उजाड़कर 'आकाशदीप' बसाया जा रहा है उनके लिए इन विकास योजनाओं में कोई जगह नहीं है।

यहां अमीर और गरीब, शहर और गांव के बीच की खाई साफ-साफ दिखाई देती है। बिजली, पानी, सड़क, स्कूल, अस्पताल आदि किसी भी मामले में यदि सेक्टरों से तुलना की जाये तो यह फासला स्वर्ग और नरक का होता है। 'स्वच्छ नोएडा, हरित नोएडा' का नारा लगाने मात्र से कोई शहर सुन्दर नहीं हो जायेगा। नोएडा के तमाम गांवों में जो औद्योगिक सर्वहारा बसता है, उन जगहों की हालत कैसी है यह वहां रहकर ही पता चल सकता है। यहां मनुष्यता जैसे पनाह मांगती है। ट्रेन की बोगियों जैसे रिहायशी मकान जेल की बैरकों का दृश्य उपस्थित करते हैं। पानी और संडास की सुविधा तो पूछिये मत। इन मकानों में 40-40 कमरों पर सिर्फ 2 या 3 लैट्रिन और एक या दो बाथरूम होता है तथा सुबह के वक्त जनसुविधा की इन जगहों पर मनुष्यों की हालत पशुओं जैसी हो जाती है। गन्दी नालियां, बदबू, सीलनभरी हवा, बिना खिड़कियों वाले कमरे- यही है नोएडा के गांवों की तस्वीर जिनमें उत्पादन करने वाली मेहनतकश आबादी रहती है।

नया बांस, बिशुनपुरा, हरौला, चौड़ा, रघुनाथपुर, छलेरा, गिझौड़, झुण्डपुरा आदि इन गांवों के साथ प्राधिकरण का व्यवहार सौतेला है। शायद ये गांव नोयडा के अंतर्गत आते ही नहीं। इन गांवों में सफाई न रहने की वजह से नालियों में गन्दगी हमेशा जाम रहती है और मच्छरों का प्रकोप बारहों महीने रहता है। बिजली-पानी की किल्लत लगातार बनी रहती है। पार्कों की बदहाली का आलम यह है कि इन गांवों के दबंग लोगों ने इन्हें गाय-भैंसों का तबेला बना रखा है।

सभी वर्गों को आवासीय सुविधा की इन घोषणाओं की सच्चाई यह है कि इनकी योजनाओं में मेहनतकश वर्ग के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। स्थिति यह है कि 1976 में बसे जिस नोएडा को देश के तमाम जगहों से आये मेहनतकशों ने अपने खून-पसीने से सुन्दर बनाया उन्हीं मजदूरों को उनकी रिहायशों से उजाड़ा जा रहा है। 'स्वच्छ नोएडा' के तहत उनकी झुग्गियों को उजाड़ा जा रहा है और प्रतिरोध करने पर उनमें आग तक लगाकर उजाड़ दिया जा रहा है। दूसरी तरफ, तथाकथित उच्च रहन-सहन के परजीवी वर्ग के लिए नोएडा में स्वर्ग बसाने की तमाम योजनाएं लागू हो रही हैं। साथ ही साथ, देशी-विदेशी औद्योगिक घरानों को तमाम सुविधाएं मुहैया करायी जा रही हैं। यहां व्यवसायियों को अपना घर बनाने के लिए कुल भूमि का 40 फीसदी हिस्सा आवास के लिए दिया गया है। जिनमें पूंजीपतियों और उच्च मध्यवर्ग को आवासीय सुविधा उपलब्ध है। सन् 2021 तक नोएडा के अभी और विस्तार की योजना है, जिसमें 167 तक सेक्टर बसाये जायेंगे। अभी तक 102 सेक्टर आंशिक या पूर्णतया बसाये जा चुके हैं।

नोएडा–जहां पूंजीपतियों को अपनी स्वर्गिक आकांक्षाओं को पूरा करने की तमाम सुविधाएं हैं वहीं मजदूर वर्ग के लिए नरक भोगने की जिल्लत। देश के तमाम जगहों के बेरोजगार नौजवान यहां अपनी रोजी-रोटी की तलाश और अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने का सपना लेकर आते हैं पर यहां आने पर भरपूर छले जाते हैं। 12 से 16 घंटे रोज भारी श्रम और अमानवीय व्यवहारों के साथ उन्हें नरक जैसी जगहों में रहकर रात गुजारनी होती है। ये नौजवान गांवों से नौजवानी के उत्साह और जिंदादिली को लेकर आते हैं पर साल भर के भीतर ही बूढ़े, बीमार और हताश शक्लों में बदल जाते हैं। वर्गीय नासमझी के चलते ये अपने भाग्य को कोसते हुए हालात से समझौता करने के लिए खुद को तैयार करते हैं। ऐसा भी नहीं कि ये नौजवान मजदूर इससे बेखबर है कि उनके सपने, उनके जीवन का सुख, उनके खून की एक-एक बूंद, भारी मेहनत, 12 से 16 घंटे की ड्यूटी और नींद की कुर्बानियां, मालिकों की तिजोरियों में मुनाफे के रूप में कैद हो जाती हैं पर इससे बाहर निकलने की कोई राह न सूझने पर वे भाग्य को कोसते हुए जीने की आदत पाल लेते हैं।

तो यह है स्वप्ननगरी और देश के विकास का मॉडल नोएडा। यहां आने और साल छह महीने जी लेने के बाद मेहनतकशों को यह बात समझ में आ जाती है कि नोएडा मालिकों के लिए स्वर्ग है और मजदूरों के लिए नर्क। पर हमें समझना है कि यह सच्चाई सिर्फ नोएडा की नहीं है। यह समूची व्यवस्था पूंजीपतियों-नौकरशाहों-चुनावी नेताओं और हमारे खून चूसने वाली जोंकों की है। यह हमारे रहन-सहन की सुविधाओं को मुहैया नहीं करा सकती। इस व्यवस्था के पास इंसानियत को देने के लिए अगर कुछ है तो सिर्फ भूख, अकाल, अशिक्षा, असमानता, शोषण, बेरोजगारी और हर पल जीवन की असुरक्षा का आतंक। हमारे लिए सोचने का मुद्दा यह है कि इस मानवद्रोही व्यवस्था से हमारी मुक्ति कैसे होगी।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी प्रफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग: कम्प्यूटर प्रभाग , राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक मण्डल: डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता: 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006। सम्पादकीय उपकार्यालय: जनगण झोम्पो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।